बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 31

मौद्रिक नीति का मार्ग

अमेरिकी केंद्रीय बैंक फेडरल रिजर्व की फेडरल ओपन मार्केट कमेटी ने अपनी दो दिवसीय बैठक के बाद यह संकेत देकर शेयर बाजारों में तेजी ला दी कि वह इस वर्ष नीतिगत ब्याज दरों में 0.75 फीसदी की कटौती के मार्ग पर बनी रहेगी। इस वर्ष मुद्रास्फीति के पूर्वानुमान में इजाफे के बावजूद ऐसा किया जा रहा है। हालांकि फेड से यह उम्मीद नहीं थी कि वह मार्च की बैठक में नीतिगत दरों में कटौती करेगा लेकिन कुछ बाजार प्रतिभागी इस बात को लेकर चिंतित थे कि मुद्रास्फीति के हालात नीतिगत दरों में कटौती की संभावना को कम कर सकते हैं या उसमें देर कर सकते हैं। निश्चित तौर पर फेडरल रिजर्व के बोर्ड सदस्यों तथा फेडरल रिजर्व बैंक के प्रेसिडेंट के ताजा अनुमान दिखाते हैं कि 2024 में मध्यम कोर मुद्रास्फीति की दर 2.6 फीसदी रहेगी जबकि दिसंबर में इसके 2.4 फीसदी रहने का अनुमान जताया गया था। चालू वर्ष की आर्थिक वृद्धि के अनुमानों को भी दिसंबर के 2.1 फीसदी से संशोधित करके 1.4 फीसदी कर दिया गया है।

आर्थिक वृद्धि की गति और कीमतों पर पड़ रहे दबाव को देखते हुए टिकाऊ ढंग से दो फीसदी का मुद्रास्फीति लक्ष्य हासिल करने में कुछ वक्त लग सकता है। जैसा कि फेडरल रिजर्व के चेयरमैन जीरोम पॉवेल ने अपनी टिप्पणी में कहा, 'यह सफर उतार-चढ़ाव से भरा रहने वाला है।' चाहे जो भी हो, फेडरल फंड्स की दर का लक्षित दायरा 5.25 से 5.5 फीसदी है जो दो दशक का उच्चतम स्तर है और यह दरों में कटौती की प्रक्रिया शुरू करने की गुंजाइश देता है। बहरहाल फेड चालू वर्ष में और अगले वर्ष में किस हद तक कटौती करने में सक्षम होता है यह देखना होगा। बाजार जहां फेड के दरों में कटौती करने की प्रतीक्षा कर रहा है, वहीं बैंक ऑफ जापान ने इस सप्ताह 17 वर्षों में पहली बार नीतिगत दरों में इजाफा किया। मंगलवार को वह ऋणात्मक नीतिगत दर व्यवस्था समाप्त करने वाला पहला केंद्रीय बैंक भी बन गया और उसने नीतिगत दर को 0-0.1 के दायरे में बढ़ा दिया। बैंक ऑफ जापान ने एक्सचेंज ट्रेडेड फंड के साथ यील्ड कर्व नियंत्रण कार्यक्रम को भी समाप्त करने का निर्णय लिया। बहरहाल, केंद्रीय बैंक जरूरत के मुताबिक बाजार से दीर्घावधि के सरकारी बॉन्ड की खरीद जारी रखेगा।

ऋणात्मक नीतिगत ब्याज दरों का विचार हमेशा से विवादास्पद रहा है और यह स्पष्ट नहीं है कि इससे अर्थव्यवस्थाओं को लाभ हुआ या नहीं। बैंक ऑफ जापान के अलावा अन्य केंद्रीय बैंकों मसलन यूरोपीय केंद्रीय बैंक तथा स्विट्जरलैंड और स्वीडन के केंद्रीय बैंकों ने ऋणात्मक ब्याज दरों के साथ प्रयोग किया। इसकी शुरुआत 2010 के दशक में हुई थी जब केंद्रीय बैंकों खासकर पश्चिमी देशों के बैंकों की ओर से यह कोशिश हो रही थी कि वैश्विक वित्तीय संकट के बाद आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाया जाए। कुछ यूरोपीय देशों में सॉवरिन ऋण बाजार की समस्या ने भी आर्थिक परिदृश्य को प्रभावित किया और केंद्रीय बैंक को आर्थिक गतिविधियों का समर्थन करने की प्रेरणा दी। बहरहाल जापान ने इसे भी अपस्फीति से लड़ाई का एक और औजार माना। ध्यान रहे कि अमेरिकी फेडरल रिजर्व ने कभी नीतिगत दरों को ऋणात्मक नहीं होने दिया।

वैश्विक वित्तीय बाजार में जापानी पूंजी की सीमित भूमिका को देखते हुए नीतिगत कदमों का भी सीमित प्रभाव है। इसके अलावा मौजूदा आर्थिक हालात में बैंक ऑफ जापान निकट भविष्य में मौद्रिक नीति को सख्त नहीं बना सकता। ऐसे में बाजार फेड पर ध्यान देगा और कुछ हद तक यूरोपीय केंद्रीय बैंक पर भी। यह उम्मीद करना उचित है कि आने वाली तिमाहियों में वैश्विक वित्तीय हालात आसान होंगे जिससे भारत जैसे उभरते बाजारों में पूंजी की आवक बढ़ेगी। ऐसे हालात में नीति निर्माताओं को मुद्रा कीमतों में अनावश्यक वृद्धि और परिसंपत्ति मूल्य मुद्रास्फीति से बचना होगा।

अजय मोहंती

जलवायु परिवर्तन की तीन बड़ी चुनौतियां

यह आवश्यक है कि हम जलवायु परिवर्तन से निपटने के क्रम में तीन प्रमुख चुनौतियों को लेकर एक साझा सहमति विकसित करें। बिजली क्षेत्र के हवाले से जानकारी दे रहे हैं अजय शाह और अक्षय जेटली

अकार्बनीकरण की राह बिजली क्षेत्र से होकर जाती है। आज यह क्षेत्र देश के कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जन के एक तिहाई के लिए जिम्मेदार है। वृद्धि के लिए अधिक बिजली की जरूरत है और अर्थव्यवस्था के अन्य हिस्से जीवाश्म ईंधन से बिजली की ओर जा रहे हैं। भारत में कार्बन मुक्त बिजली क्षेत्र की तस्वीर कैसी होगी?

अकार्बनीकरण एक कठिन समस्या है। जीवाश्म ईंधन ऊर्जा उद्योग और उसके उपयोगकर्ताओं के पास लाखों करोड़ रुपये की परिसंपत्ति है और कई लाख श्रमिक। इस सारी पूंजी और श्रम ने जीवन जीने के तरीके को इतना सामान्य बना दिया है जो जलवायु परिवर्तन को प्रेरित करने वाला है। इस व्यवस्था से अलग हटकर एक नई विश्व व्यवस्था कायम करने के लिए अकल्पनीय धन और कच्चे माल की आवश्यकता है। अगर केंद्रीय नियोजन के नजरिये से देखा जाए तो जरूरी बदलाव हासिल करना असंभव नजर आता है और नीति निर्माताओं के लिए यह कल्पना करना मुश्किल है कि बिना कोयले, तेल और गैस के भारत की क्या स्थिति होगी? परंतु एक बार जब हम लाखों फर्मों और व्यक्तियों की ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं और उनके लिए प्रोत्साहन तय कर देते हैं तो यह व्यावहारिक हो जाएगा।

सरकार ने इसे लेकर कई तरह की आकांक्षाएं जताई हैं और सहमति भी प्रदान की है। हमें 2070 तक विशुद्ध शून्य उत्सर्जन का लक्ष्य भी हासिल करना है। हमें 2005 से 2030 तक उत्सर्जन को सकल घरेलू उत्पाद के 45 फीसदी तक कम करना है। बिजली में आधी स्थापित क्षमता के गैर जीवाश्म ईंधन आधारित हो जाने की उम्मीद है। इन आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए अथवा विशुद्ध शून्य की तारीख को समय पूर्व हासिल करने के लिए एक रणनीति की आवश्यकता है।

यह इंजीनियरों के लिए ऊर्जा उत्पादन या खपत के तरीकों पर प्रौद्योगिकियों को चुनने और व्यवसाय मॉडल डिजाइन करने का संकेत नहीं है। ऐसा केंद्रीय नियोजन दो कारणों से उपयोगी नहीं है। भारत एक बड़ा और जटिल देश है और प्रौद्योगिकी तथा कारोबारी मॉडल का पता लगाने के लिए एक व्यक्ति या फर्म के स्तर पर लाखों विकेंद्रीकृत अनुकूलन करना पड़ता है। जलवायु परिवर्तन के खतरे ने दुनिया भर में शोध को बल दिया। भारत के लिए इसका लाभ निःशुल्क है। दुनिया भर के शोधकर्ताओं की बदौलत अब सोलर पैनल कई प्लास्टिक पैनलों से भी सस्ते हो चुके हैं। शोध समाप्त होने का नाम नहीं ले रहे हैं। कोई नहीं जानता है कि भविष्य की तकनीक और कारोबारी मॉडल कैसे होंगे। रणनीतिक विचार प्रक्रिया में यह निर्धारित करना शामिल नहीं है कि सोलर पैनल, इलेक्ट्रिक वाहनों और बैटरी तकनीक का कैसे इस्तेमाल किया जाएगा। यहां तीन बड़ी चुनौतियां हैं। हमारे विचार में ये सवाल महत्त्वपूर्ण हैं। हम मानते हैं कि यह तलाश सही पड़ताल की ओर ले जाएगी और संस्थानों और प्रोत्साहनों को सही ढंग से अंजाम दिया जा सकेगा।

पहली चुनौती- केंद्र और राज्यः बिजली क्षेत्र में गहरी अंतर्संबद्धता है जहां प्रमुख जिम्मेदारी राज्यों की होती है और अनुषंगी लेकिन अहम भूमिका केंद्र सरकार की भी होती है। दोनों के लिए बेहतर तरीका क्या हो सकता है, दोनों में से प्रत्येक अपनी भूमिका कैसे निभाएगा, इनमें से हर एक दूसरे के क्षेत्र में कैसे प्रवेश कर सकता है? लोक सभा चुनाव बिजली के मुद्दे पर नहीं लड़े और जीते जाते हैं लेकिन कई राज्यों में ऐसा होता है। कई राज्यों में निःशुल्क और सब्सिडी वाली बिजली दी जाती है जिसकी कीमत वाणिज्यिक उपयोगकर्ताओं को अतिरिक्त शुल्क देकर चुकानी पड़ती है। अब निजी कंपनियों समेत एक दर्जन से अधिक वितरण कंपनियां हैं लेकिन अभी भी अधिकांश वितरण राज्य सरकारों के हाथ में है। बिजली क्षेत्र राज्यों की अर्थव्यवस्था पर गैर किफायती बोझ डालता है इसमें कुछ लोगों के लिए महंगी बिजली और बाकी के लिए सब्सिडी वाली रियायती बिजली होती है। ऐसे मामलों में सरकारी उपक्रमों को घाटा होता है और राज्य सरकारों को बजट से इतर नकदी कंपनियों को देनी होती है। कुछ राज्यों में बिजली से जुड़ी राजकोषीय दिक्कतें मध्यम अवधि की राजकोषीय नीति का विषय हैं।

दूसरी चुनौती- भारत और विश्वः जलवायु संबंधी मुद्दे को लेकर अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर असर होगा। भारत का विशुद्ध शून्य की ओर बदलाव को अपना पाना जलवायु परिवर्तन के खिलाफ वैश्विक लड़ाई में बहुत अहम है। दुनिया भर के लोग जलवायु परिवर्तन को रोक पाने को लेकर बहुत आशान्वित नहीं हैं। यह भारत के लिए दिक्कत की बात है क्योंकि हम यूरोपीय संघ की जगह दुनिया में तीसरे सबसे बड़े कार्बन उत्सर्जन वाले देश बन चुके हैं। हम जलवायु फाइनैंसिंग के क्षेत्र में ठोस और अपनाए जाने लायक उपाय सुझाकर इस क्षेत्र में नेतृत्व हासिल कर सकते हैं। इसमें पेरिस समझौते के तहत उपलब्ध फ्रेमवर्क का लाभ उठाना और द्विपक्षीय व्यवस्था को अपनाना शामिल है।

तीसरी चुनौती-राज्य और बाजारः जलवायु परिवर्तन की समस्या राज्य द्वारा हल सुझाने और लोगों को आदेश देने से नहीं हल होगी। इसके लिए लोगों को अपने स्तर पर पहल करनी होगी और राज्य को इस क्षेत्र में बुनियादी बाजार विफलताओं को दूर करना होगा। इस पहेली का हल सही संतुलन कायम करने में निहित है। इस क्षेत्र में बाजार की नाकामी राज्य की दंडात्मक शक्ति के न्यूनतम इस्तेमाल के लिए दलील तैयार करती है। एक बार ऐसा हो जाने के बाद अपने हित में विचार करने वाले लाखों लोग यह पता कर सकेंगे कि उनके हित में क्या है। फिलहाल बिजली क्षेत्र में संसाधन आवंटन के अधिकांश निर्णय उन अधिकारियों द्वारा लिए जाते हैं जो अक्सर पहले से परिभाषित काम करने के लिए निजी व्यक्तियों को दीर्घकालिक बिजली खरीद अनुबंध प्रदान करते हैं। ऐसे रुख में निजी व्यक्तियों की रचनात्मकता, जोखिम उठाने की क्षमता, नवाचार और ऊर्जा का इस्तेमाल नहीं होता। ऐसे में निजी लोगों की कल्पनाशीलता और जोखिम लेने की क्षमता अल्पावधि के लेनदेन तक सीमित है और बिजली बाजार में इनकी हिस्सेदारी 12 फीसदी है।

जलवायु परिवर्तन बहुत महत्त्वपूर्ण है, उसे केवल जलवायु विशेषज्ञों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है। यह एक बहुत बड़ी समस्या है जो हर किसी के जीवन को प्रभावित करने वाली है। इस पर बहस, आलोचना और नवोन्मेष के लिए बड़ी तादाद में लोगों की जरूरत है तभी उपरोक्त तीन चुनौतियों पर किसी सहमति पर पहुंचा जा सकता है। इनमें से प्रत्येक के लिए अलग विशेषज्ञता की जरूरत है। उसके बाद यह देखने की जरूरत है कि क्या तीनों चुनौतियों में से प्रत्येक पर लागू विचार अन्य दो के साथ निरंतरता में हैं? जब समग्र नीति पर संपूर्णता से विचार किया जाता है तो प्रश्न यह है कि यह कितनी जल्दी विशुद्ध शून्य उत्सर्जन तक पहुंचने के लिए जरूरी संसाधन और ऊर्जा जुटाने में सक्षम होगी?

(अजय शाह एक्सकेडीआर फोरम में शोधकर्ता और अक्षय जेटली नीति सलाहकार हैं)

कचरे के ढेर तले दबते जा रहे अपने शहर

प्रगति पर समकालीन बहस में आर्थिक विकास और पर्यावरण संरक्षण के बीच चले आ रहे पुराने द्वंद्व को खारिज कर दिया गया है। सतत विकास की जरूरत को समझना आज के वैश्विक दृष्टिकोण को रेखांकित करता है। अपशिष्ट उत्पादन और उसका सही तरीके से निपटान जैसे गंभीर मुद्दे पर हम सब का ध्यान केंद्रित रहता है।

आधुनिक अर्थव्यवस्था में अनचाहे उत्पाद के तौर पर लगातार बढ़ता कचरा विश्व स्तर पर दोनों कारकों पारिस्थितिकी तंत्र और लोगों के स्वास्थ्य के समक्ष गंभीर चुनौती खड़ी करता है। हालिया आंकड़े भी हालात की भयावता को प्रदर्शित करते हैं। विश्व बैंक का अनुमान है कि वर्ष 2050 तक वैश्विक स्तर पर 3.4 अरब टन तक अपशिष्ट पैदा होगा। यह मौजूदा वार्षिक स्तर 2.01 अरब टन से बहुत ज्यादा है। लगातार उभरते शहरीकरण, जनसंख्या वृद्धि और उपभोक्तावादी जीवनशैली जैसे कारक बेतहाशा कूड़ा उत्पादन के मुख्य कारण हैं। यह बड़े खतरे की निशानी है, जिस पर फौरन ध्यान दिए जाने की जरूरत है।

विश्व बैंक के अनुमान की तरह ही 'वेस्ट वाइज सिटीज' के तहत यूएन हैबिटैट ने भी इस दिशा में प्रकाश डाला है कि नगर निकायों से निकलने वाला ठोस कचरा वर्ष 2050 तक लगभग दोगुना हो जाएगा। इसमें यह भी कहा गया है कि लगभग 3 अरब लोग अपशिष्ट निबटान की व्यवस्थित सुविधाओं से वंचित हैं।

यूं तो हर तरह का कचरा खतरनाक है, परंतु इलेक्ट्रिक और इलेक्ट्रॉनिक उपकरणों से निकलने वाला कचरा वैश्विक स्तर पर बड़ी समस्या बन रहा है, क्योंकि इसमें बहुत ही खतरनाक यौगिक होते हैं। कूड़े का उचित तरीके से प्रबंधन नहीं होने के कारण वायु और जल के साथ-साथ मृदा भी प्रदूषित होती है। कचरा इसलिए भी बड़ी समस्या बनता जा रहा है कि इसके उठान के बुनियादी ढांचे का व्यापक तौर पर अभाव है और आज भी निबटान की पारंपरिक विधियां अपनाई जाती हैं।

खुली और गंदी लैंडफिल साइट पेयजल को दूषित करती हैं। इससे संक्रमण एवं बीमारियां फैलने का खतरा रहता है। इधर-उधर फैले कचरे के कारण पूरा पारिस्थितिकी तंत्र प्रदूषित होता है, जबकि औद्योगिक कचरे अथवा ई-कचरे से निकलने वाले जहरीले यौगिक शहरी निवासियों के साथ-साथ पर्यावरण को बहुत अधिक नुकसान पहुंचाते हैं।

अमित कपूर और विवेक देवरॉय

बढ़ते कचरे के कारण समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र भी इस समय अभूतपूर्व चुनौती का सामना कर रहा है। अनुमान इस बात की ओर संकेत करते हैं कि यदि कचरे में इसी गति से वृद्धि होती रही तो वर्ष 2050 तक समुद्र में प्लास्टिक का भार मछलियों से ज्यादा हो जाएगा। रिहायशी बस्तियां भी इसी समस्या से दोचार हो रही हैं। कचरा कुप्रबंधन के कारण वायु और जल दोनों प्रदूषित हो रहे हैं। नतीजतन जलवायु संकट खड़ा हो रहा है और पूरे विश्व में लोगों के स्वास्थ्य के लिए गंभीर खतरा पैदा हो रहा है। इस पर्यावरणीय नुकसान से निपटने के लिए आर्थिक अड़चनें नहीं हैं, फिर भी निष्क्रियता इन पर हावी है।

भारत के शहरी परिदृश्य की कड़वी सच्चाई दो शहरों की कहानी कहती हैः एक वैश्विक स्तर पर पहचान हासिल कर रहा है, जबकि दूसरा अपने कचरे के ढेर के नीचे दबा संघर्ष कर रहा है। बड़े शहरों में हजारों टन कचरा प्रतिदिन निकलता है, जो पहले से ही उफन रहीं लैंडफिल में पहुंचता है अथवा रिहायशी इलाकों की गलियों और नालों में भरता जाता है। निम्न मध्य वर्गीय इलाकों में हालात और भी बदतर हैं, जहां साफ-सफाई और कचरा प्रबंधन सेवाएं प्रायः एक ख्वाब ही हैं। इन बस्तियों के पास कचरे के बड़े-बड़े ढेर कठोर वास्तविकता है। पर्यावरण, वन और जलवायु परिवर्तन मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक भारत में प्रति वर्ष लगभग 6.2 करोड़ टन कचरा उत्पन्न होता है। इसमें करीब 4.3 करोड़ टन कचरा संग्रहित कर लिया जाता है, जबकि शेष 3.1 करोड़ टन लैंडफिल में डाला जाता है। शहरों का विस्तार बहुत तेजी से हो रहा है और बदलती जीवनशैली खपत पैटर्न को प्रभावित कर रही है। इस कारण ऐसा अनुमान है कि नगरों में इस दशक के अंत तक ठोस कचरा उत्पादन 16.5 करोड़ टन बढ़ सकता है।

केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड की ठोस कचरा प्रबंधन नियम 2016 के कार्यान्वयन पर वार्षिक रिपोर्ट (2020-21) के अनुसार देश में प्रतिदिन 160,038.9 टन ठोस कचरा उत्पन्न होता है, जिसमें से 152,749.5 टन अथवा 95.4 प्रतिशत प्रतिदिन सफलतापूर्वक संग्रहित कर लिया जाता है। कुल संग्रहित अपशिष्ट में 79,956.3 टन यानी लगभग आधे को संसाधित कर लिया जाता है और शेष 29,427.2 टन अथवा 18.4 प्रतिशत लैंडफिल में डाला जाता है।

इस बीच प्रति दिन निकलने वाला 50,655.4 टन यानी कुल उत्पन्न कचरे का 31.7 प्रतिशत इधर-उधर बिखरा रहता है यानी उसका उठान ही नहीं होता। रिपोर्ट में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि वर्ष 2015-16 और 2020-21 के बीच छह वर्षों में प्रति व्यक्ति अपशिष्ट उत्पादन में मामूली गिरावट आई है। वर्ष 2020-21 में 119.7 ग्राम प्रति व्यक्ति ठोस कचरा प्रति दिन निकला था। राज्य स्तर पर इस सूची में दिल्ली शीर्ष पर रहा। विशेष यह कि छत्तीसगढ़ में 100 प्रतिशत ठोस कचरे का प्रबंधन अथवा निपटान किया जाता है।

लगातार बढ़ते कूड़े को लेकर हालात भयावह होने के बावजूद कचरा उत्पादन और प्रबंधन की तरफ वैश्विक स्तर पर उतना ध्यान नहीं दिया जा रहा, जितना आवश्यक है। इस चुनौती से निपटने की पहल अक्सर वित्तीय अड़चनों और आपसी सामंजस्य की कमी से ग्रस्त दिखाई देती हैं। लेकिन कभी गहरे पैठ बना चुकी 'आर्थिक विकास पर्यावरण की कीमत पर होना चाहिए' की धारणा अब पुरानी और बिल्कुल गलत साबित हो रही है।

इस समस्या का समाधान तो रिसाइक्लिंग (पुनर्चक्रण) और चक्रीय अर्थव्यवस्था सिद्धांत अपनाने समेत टिकाऊ अपशिष्ट प्रबंधन में ही निहित है। इससे पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ आर्थिक लाभ भी होंगे। टिकाऊ अपशिष्ट प्रबंधन के मामले में कुछ देश बेहतर काम कर रहे हैं, जिन्होंने शेष दुनिया के लिए मानक स्थापित किए हैं। स्वीडन का नवीकरणीय वेस्ट टू एनर्जी यानी कूड़े से ऊर्जा कार्यक्रम वहां लैंडफिल साइट को कम करने में काफी कारगर साबित हुआ है। इसी प्रकार जर्मनी का मजबूत पुनर्चक्रण बुनियादी ढांचा इस बात का उदाहरण है कि कैसे चक्रीय आर्थिक सिद्धांत अपनाकर कचरे को कम किया जा सकता है। टिकाऊ अपशिष्ट प्रबंधन में समाज के सभी क्षेत्रों से सहयोग किए जाने की आवश्यकता है। सरकारी नीतियां ऐसी हों जो कचरा निपटान की टिकाऊ उपायों को प्रोत्साहित करें। हरित प्रौद्योगिकी और चक्रीय मॉडल व्यवसाय केंद्रित होना चाहिए। आम लोगों को भी उपभोग और अपशिष्ट निपटान के लिए अधिक ईमानदार दृष्टिकोण अपनाना होगा।

(कपूर इंस्टीट्यूट फॉर कंपीटिटिवनेस, इंडिया में चेयर और स्टैनफर्ड यूनिवर्सिटी में व्याख्याता हैं। देवरॉय प्रधानमंत्री की आर्थिक सलाहकार परिषद के चेयरमैन हैं। लेख में जेसिका दुग्गल का सहयोग)

आपका पक्ष

नकली दवाओं का आपराधिक कारोबार

लेख 'जटिलताओं से भरा दवा क्षेत्र का नियमन' रोगियों के जीवन से खिलवाड़ करते आपराधिक प्रवृत्ति के नकली व्यापार पर गंभीर चिंतन करता है। प्रथम दृष्टया नकली दवाओं का कारोबार भ्रष्टाचार और अपराध से जुड़ा है क्योंकि बिना सांठगांठ के सरकारी और निजी अस्पतालों में नकली और घटिया दवाओं की आपूर्ति संभव ही नहीं है। पिछले दिनों भी दिल्ली में सरकारी अस्पतालों में नकली दवाओं का घोटाला सामने आया परंतु जांच की क्या प्रगति है और दोषियों पर क्या कार्रवाई हुई, नहीं पता। दवाओं की ऑनलाइन सप्लाई में भी नियमन की बहुत अधिक आवश्यकता है। महंगी दवाओं का मुख्य कारण उनके विदेशी दवा कंपनियों और सप्लायरों से आयात से जुड़ा है जिन पर उनके पेटेंट हैं और उत्पादन पर अधिकार है। भारत में उनके लाइसेंस पर दवाओं की कीमतें भी इसीलिए अधिक हैं।

भारत में स्वदेशी कंपनियों द्वारा निर्मित दवाएं और उनके पेटेंट से दवाओं के मूल्यों में कमी आएगी

भारत में स्वदेशी कंपनियों द्वारा निर्मित दवाएं और उनके पेटेंट से निश्चित रूप से दवाओं के मूल्यों में कमी आएगी। दवाओं के चिकित्सकों द्वारा लिखने में भी प्रोटोकॉल आवश्यक हैं जिसमें दवाओं के कंपाउंड और साल्ट लिखे होने चाहिए जिससे दवा कंपनियों को फायदा पहुंचाने के दस्तूर पर रोक लगे। घुटने का रिप्लेसमेंट और हृदय में एंजियोप्लास्टी बहुत प्रचलित हो गए हैं। मधुमेह, हृदयरोग, लीवर, किडनी के रोगी नियमित रूप से चिकित्सकों और दवाओं पर बहुत अधिक निर्भर होते हैं और सदा अपने स्वास्थ्य के प्रति असुरक्षित रहते हैं। उनकी यही असुरक्षा शोषण का कारण है। केवल दवा नियमन से ही नियंत्रण नहीं होगा, चिकित्सा के क्षेत्र में नैतिकता और ईमानदारी भी चाहिए।

विनोद जौहरी, दिल्ली

वन हैं तो हम हैं

21 मार्च को अंतरराष्ट्रीय वन दिवस मनाया गया। दुनिया भर में इस उपलक्ष्य में प्रोग्राम किए गए। संयुक्त राष्ट्र महासभा ने वनों की सुरक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने के उद्देश्य से 28 नवंबर 2012 को हर वर्ष 21 मार्च को अंतरराष्ट्रीय वन दिवस के रूप में मनाने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया था। तब से हर वर्ष 21 मार्च को यह दिवस मनाया जाता आ रहा है। हिमाचल प्रदेश में वनों को काटकर भवनों का निर्माण हो रहा है। भारत में बहुत पहले से ही वनों और वृक्षों को काटने से रोकने के प्रयास सरकारों, सामाजिक संस्थाओं और पर्यावरण प्रेमियों ने आरंभ कर दिए थे। एक तरफ 1950 में वनों को बचाने के लिए 'वन महोत्सव' की शुरुआत की गई, वहीं 1970 के दशक में जब देश में वन संपदा का अपार भंडार होता था। तब भी पर्यावरण की चिंता करते हुए गढ़वाल के लोगों ने वृक्षों को बचाने के लिए चिपको आंदोलन किया था। अगर हर कोई अपने घर के आंगन या छत पर तुलसी, एलोवीरा, पुदीना, धनिया या फिर अन्य फूलों के पौधे लगाएं तो भी देश में हरियाली बढ़ सकती है, जो पर्यावरण पर सकारात्मक असर जरूर डालेगी और इससे घर की सुंदरता भी बढ़ेगी। घर में लगे तुलसी, एलोवेरा और अन्य आयुर्वेदिक पौधे छोटी-मोटी बीमारी में भी काम आएंगे।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो - पीटीआई

भारत, मोजांबिक और तंजानिया त्रिपक्षीय संयुक्त नौसेना अभ्यास के दूसरे संस्करण के दौरान गुरुवार को नई दिल्ली में तीनों देशों के नौसेना अधिकारियों ने बैठक की।

प्रवाह

महोत्सव विश्वास का 75 निर्भीक पत्रकारिता का आठवां दशक स्थापना वर्ष : 1948

खुद को खोजने का सबसे अच्छा तरीका दूसरों की सेवा में खुद को खो देना है। - महात्मा गांधी

वर्ल्ड हैप्पीनेस रिपोर्ट-2024 की सूची के शीर्ष दस देशों में कोई भी विश्व की शीर्ष अर्थव्यवस्थाओं में शामिल नहीं है, जिससे साबित होता है कि खुशियों का पैसों से उतना संबंध नहीं है, जितना अमूमन समझा जाता है। अलबत्ता, खुशियों का फॉर्मूला तो यह है कि आर्थिक लाभों के फायदे सभी तक समान रूप से पहुंचें।

खुश होने को क्या चाहिए

संयुक्त राष्ट्र सतत विकास समाधान नेटवर्क द्वारा प्रकाशित 2024 की वर्ल्ड हैप्पीनेस रिपोर्ट को अगर वाकई खुशियों का सूचकांक मानें, तो इसके कुछ निष्कर्ष वाकई उल्लेखनीय हैं। फिनलैंड लगातार सातवें साल दुनिया का सबसे खुशहाल देश बना हुआ है, जबकि दूसरी और तीसरी पायदान पर क्रमशः डेनमार्क और आइसलैंड हैं। इसके अलावा, शीर्ष दस देशों में कोई भी देश विश्व की शीर्ष अर्थव्यवस्थाओं में शामिल नहीं है, जिससे यही साबित होता है कि खुशियों का पैसों से उतना संबंध नहीं है, जितना अमूमन समझा जाता है। अमेरिका का शीर्ष बीस खुशहाल देशों में जगह न बना पाना चौंकाता है, जो इस रिपोर्ट के इतिहास में पहली बार हुआ है। रिपोर्ट के अनुसार, तमाम तकनीकी विकास के बावजूद अमेरिकी बच्चे एक खतरनाक किस्म के अकेलेपन से ग्रस्त होते जा रहे हैं, जो न सिर्फ अमेरिका, बल्कि दूसरे देशों के बच्चों के लिए भी बड़े खतरे को रेखांकित करता है। पिछले वर्ष की भांति भारत इस सूची में 126वें स्थान पर है, जबकि पाकिस्तान 108वें स्थान पर है, जिसका मतलब यह है कि पाकिस्तान के लोग भारतीयों से ज्यादा खुशहाल हैं, जिसे समझना थोड़ा मुश्किल है। एक मुल्क, जिसका बजट घाटा बढ़कर करीब 86 खरब डॉलर पर पहुंच गया हो, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के साथ जिसका तीन अरब डॉलर का फंडिंग कार्यक्रम अगले महीने खत्म हो रहा हो, उसकी आर्थिक बदहाली समझी जा सकती है। दूसरी तरफ अफगानिस्तान का, जहां तालिबान शासन में व्यक्तिगत अधिकार व स्वतंत्रताएं मरीचिका बनी हुई हैं, सूची में सबसे निचले पायदान पर होना चकित नहीं करता। उल्लेखनीय है कि यह रिपोर्ट हर साल 140 से ज्यादा देशों का मूल्यांकन करती है, जिसका आधार वह सामाजिक सुरक्षा, आय, स्वास्थ्य, स्वतंत्रता, उदारता और भ्रष्टाचार की नामौजूदगी को बनाती है। लेकिन सवाल यह है कि क्या खुशियों को किसी पैमाने पर मापा जा सकता है। अमूमन माना जाता है कि खुश वही है, जो

सुखी है। लेकिन सुख का आधार संतोष होता है, जो सापेक्ष होता है। यानी जो चीज एक व्यक्ति को खुशी देती हो, जरूरी नहीं कि दूसरे को भी खुशी दे। इस विरोधाभास के बावजूद हैप्पीनेस रिपोर्ट जिन तथ्यों की ओर इशारा करती है, वे महत्वपूर्ण हैं। युद्ध, वैश्विक आपूर्ति शृंखलाओं पर मंडराते संकट और परमाणु युद्ध की चेतावनियों से उपजी वैश्विक अस्थिरता वाले माहौल में भी अगर तमाम वैश्विक रेटिंग एजेंसियां भारत की विकास दर से उम्मीदें लगाए हुई हैं, तो यह आश्वस्त करने वाली बात है, लेकिन आर्थिक लाभ जब सभी तक समान रूप से पहुंचेंगे, तभी सही मायनों में सभी खुश होंगे।

यह मृत्यु झकझोरती है

बांग्लादेश में घरों में काम करने वाली एक आदिवासी किशोरी की नौवीं मंजिल से गिरकर हुई मृत्यु स्तब्ध कर देने वाली है। यह हम कैसा समाज बना रहे हैं, जिसमें विपन्न समुदाय की एक किशोरी स्कूल जाने के बजाय घरों में काम करने जाती है, और वहां शोषण के बीच उसका ऐसा त्रासद अंत होता है!

तसलीमा नसरीन

चर्चित लेखिका

जो बांग्लादेश बड़ी तेजी से कट्टरवाद की ओर झुकता चला गया है, जहां स्त्रियों की स्वतंत्रता और उदार चिंतन की जगह क्रमशः सिकुड़ती गई है, और हाल के वर्षों में आर्थिक स्थिति बेहतर होने के कारण जहां उपभोक्तावाद तेजी से बढ़ा है, वहां पिछले दिनों घरेलू काम करने वाली एक आदिवासी किशोरी प्रीति उरांव की संदेहास्पद मृत्यु ने लोगों का ध्यान खींचा है। दक्षिण एशिया में उरांव आदिवासियों की बड़ी आबादी रहती है। भारत में मुख्यतः झारखंड, छत्तीसगढ़, मध्य प्रदेश और ओडिशा में इनका निवास है, तो बांग्लादेश में भी इनकी बड़ी संख्या है। वर्ष 2020 की आदमशुमारी के मुताबिक, बांग्लादेश में उरांव आदिवासियों की आबादी लगभग 2.45 लाख है।

मैं यहां उरांव आदिवासियों का इतिहास नहीं बताने जा रही। मैं इस समुदाय की एक लड़की प्रीति उरांव के बारे में बता रही हूं, जिसकी दर्दनाक कहानी ने एक बार फिर जहां गरीबों की असहायता को बताया है, वहीं यह त्रासदी आदिवासी समुदाय की विपन्नता को भी सामने लाती है। पंद्रह साल की प्रीति को स्कूल में होना चाहिए था। स्कूल न जाकर प्रीति लोगों के घर में काम क्यों करती थी? क्योंकि वह गरीब थी। उसके पिता एक चाय बागान में काम करते थे। लेकिन कम आय में गुजारा नहीं होता था, इसलिए प्रीति को लोगों के घर का कामकाज करने के लिए उसने ढाका भेज दिया था। दुनिया भर में ऐसे असंख्य मजबूर परिवार हैं, जो अपने बच्चों को काम करने के लिए भेज देते हैं।

लेकिन प्रीति ढाका शहर के किसी आम घर में नहीं, चर्चित अंग्रेजी अखबार द *डेली स्टार* के एक संपादक के यहां काम करती थी, जिनकी स्वाभाविक ही बौद्धिक छवि थी। जो व्यक्ति अखबार में मानवाधिकार, स्त्री-पुरुष समान अधिकार और औरतों के साथ होनेवाली हिंसा के खिलाफ लिखता हो, जो हर तरह के शोषण के खिलाफ बात करता हो, उससे व्यवहारिक तौर पर भी स्त्रियों के साथ संवेदनशील व्यवहार करने

की ही उम्मीद की जाती है। लेकिन पता चलता है कि उनके घर पर बाल श्रमिक काम करते थे। ऐसा क्यों था? अगर बौद्धिक लोग भी अपने घर पर बच्चों से काम कराएंगे, तो समाज किससे सीखेगा कि हर बच्चे को स्कूल जाने का अधिकार है? तथ्य यह है कि पिछले साल छह अगस्त को भी काम करने वाली एक किशोरी फिरदौसी नौवीं मंजिल स्थित उस व्यक्ति के फ्लैट से नीचे कूदकर गंभीर रूप से घायल हो गई थी। अपनी जान जोखिम में डालकर वह किशोरी उतनी ऊंचाई से क्यों कूदी थी? फ्लैट में क्या हुआ था? महीनों बाद प्रीति उरांव को भी फिरदौसी की तरह अपनी जान जोखिम में डालकर नीचे कूदना पड़ा। लेकिन वह फिरदौसी की तरह भाग्यशाली नहीं थी। नीचे गिरने के बाद वह मर गई।

सबसे स्तब्ध करने वाली बात यह है कि छह महीने पहले एक दुखद घटना घटने के बाद भी उस संपादक और उनके परिवारजनों ने कोई सबक नहीं लिया था। सिर्फ यही नहीं कि उनके यहां घरेलू कामगारों के शोषण का सिलसिला लगातार जारी रहा, बल्कि जिस खिड़की से फिरदौसी कूदी थी, उसमें ग्रिल लगाने या सुरक्षा की दूसरी व्यवस्था करने की जरूरत भी उस परिवार ने महसूस नहीं की। क्या उस परिवार को इसका अहसास नहीं था कि शोषण से तंग आकर काम करने वाली दूसरी लड़की भी जान बचाने के लिए कूद सकती है? या अपनी विशिष्ट पहचान या समाज में खास छवि के कारण उस परिवार को इसकी कोई परवाह नहीं थी?

प्रत्यक्षदर्शियों का कहना था कि प्रीति के शरीर पर जख्मों के निशान थे। कुछ लोगों का कहना है कि प्रीति की बुरी तरह पिटाई की गई होगी, यहां तक कि उसे मार डाला गया होगा, फिर ऊपर से लाश नीचे फेंक दी गई। जबकि कुछ लोगों का यह आकलन है कि भीषण पिटाई के बाद प्रीति ने जान बचाने के लिए ऊपर से छलांग लगा दी होगी।

आश्वस्ति की बात यह है कि आरोपी की गिरफ्तारी हुई है। पुलिस ने इस मामले में उस घर के कुल छह लोगों को गिरफ्तार किया है। गौर करने वाली बात यह है कि काम करने वाली नौकरानियों पर अत्याचार करने के कारण आरोपी को इससे पहले भी गिरफ्तार किया गया था। लेकिन यह मामला बेहद गंभीर है। प्रीति उरांव की मृत्यु से बांग्लादेश में हलचल मच गई है, तो इसका कारण यही है। पहाड़ी छात्रों का एक संगठन न सिर्फ प्रीति के मामले में न्याय की मांग करते हुए सड़क पर उतरा, बल्कि उसका यह भी कहना है कि प्रीति के पिता को दो लाख रुपये देकर आरोपी इस मामले को रफा-दफा करना चाहता है। यह एक और उदाहरण है कि समृद्ध लोगों को अपने अन्याय का कोई अहसास नहीं होता। इसके बजाय वे कुछ पैसे देकर गरीबों का मुंह बंद कर देने पर ज्यादा भरोसा करते हैं। यह सही है कि प्रीति उरांव की मौत से जुड़ी पूरी सच्चाई अभी तक सामने नहीं आई है। या तो उसे मारकर फेंक दिया गया होगा, या फिर शोषण से मुक्ति के लिए उसने खुद जोखिम उठाया होगा। लेकिन यह तो साफ ही है कि उसे काम करते हुए शोषण का सामना करना पड़ रहा था।

दूसरे देशों की तरह बांग्लादेश में भी एक समय घरेलू नौकरानियों का खूब शोषण किया जाता था। लेकिन आज वह स्थिति नहीं है, क्योंकि हजारों की संख्या में खुली गारमेंट्स फैक्टरियों के कारण वहां घरेलू नौकरानियां मिलना पहले की तरह आसान नहीं है। उन्हें वेतन भी पहले की तुलना में ज्यादा मिलता है। पर मालिकों और घरेलू कामगारों का रिश्ता पहले जैसा ही है। गरीब महिलाओं की बड़ी आबादी अधिक वेतन के लालच में खाड़ी देशों का रुख करती हैं। यह अलग बात है कि वहां भी उन्हें शोषण का सामना करना पड़ता है। लेकिन यह देखना दुर्भाग्यपूर्ण है कि अपने देश में भी अनेक गरीब लड़कियां और महिलाएं शोषण का निरंतर शिकार होती हैं।

प्रीति उरांव की मृत्यु ने, दुर्भाग्य से, समृद्ध होते समाज की उस दुखद सच्चाई से हमारा सामना कराया है, जिसमें न केवल अमीरी और गरीबी के बीच खाई बढ़ती जा रही है, बल्कि समाज में गरीबों के प्रति अमानवीय व्यवहार को सामान्य घटना समझ लिया जाता है। जब तक समतापूर्ण समाज का निर्माण नहीं होगा, तब तक अमीर-गरीब की खाई को पाटा नहीं जाएगा, तब तक गरीबों के शोषण पर अंकुश नहीं लगने वाला। लेकिन इसका मतलब यह तो नहीं कि समाज ऐसी घटनाओं पर चुप रह जाए, बल्कि ऐसे मामलों में समाज को ही सक्रिय होना पड़ेगा।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

विस्लावा सिम्बोर्स्का

कोई भी ज्ञान जो नए प्रश्नों की खोज नहीं करता है, जल्द ही समाप्त हो जाता है : यह जीवनानुकूल तापमान बनाए रखने में विफल हो जाता है। सबसे चरम मामलों में, यह समाज के लिए घातक भी हो सकता है।

जो नए प्रश्न नहीं खोजता जल्द समाप्त हो जाता है

प्रेरणा कवियों या सामान्यतः कलाकारों का विशेषाधिकार नहीं है। वैसे लोगों की एक जमात हमेशा थी, है, और रहेगी, जिनसे प्रेरणा मिलती है। यह जमात उन सभी लोगों से बनी है, जिन्होंने होशोहवास में अपने पेशे को चुना है, तथा जो प्रेम और सूझ-बूझ से अपना काम करते हैं। इसमें डॉक्टर, शिक्षक, माली हो सकते हैं—इसी तरह सौ और व्यवसायों की सूची मैं बना सकती हूं। जब तक वे इसमें नई चुनौतियों की खोज करने में सक्षम होते हैं, उनका काम निरंतर एक साहसिक कार्य बनता जाता है। कठिनाइयां और बाधाएं उनकी जिज्ञासा को कभी परास्त नहीं करतीं। उनके द्वारा निष्पादित हर समस्या से नए सवालों का एक झुंड उभरता है। प्रेरणा जो कुछ भी है, वह 'मैं नहीं जानता' के नैरंतर्य से उत्पन्न है। ऐसे लोग बहुत नहीं हैं। इस भूमि के अधिकांश वासी जीविकोपार्जन के लिए काम करते हैं, वे काम करते हैं; क्योंकि करना पड़ता है। उन्होंने इस या उस तरह की नौकरी को जुनून से नहीं चुना; उनके जीवन की परिस्थितियों ने उनके लिए चुनाव किया।

अप्रिय काम, उबाऊ काम, काम का मूल्य केवल इसलिए है; क्योंकि दूसरों को इतना भी नहीं मिला है, चाहे कितना भी प्यारा और उबाऊ हो—यह सबसे कठोर मानवीय दुखों में से एक है। जिस काम को नापसंद किया जाता है, जो काम उबाऊ होता है, उसका मूल्य सिर्फ इसलिए होता है; क्योंकि वह भी हर किसी के लिए उपलब्ध नहीं होता है, फिर भी वह सबसे निष्ठुर मानवीय दुखों में से एक है। और इसका कोई संकेत नहीं है कि आने वाली सदियां इस इलाके में कोई सुखद बदलाव लाने वाली हैं। सत्ता के लिए संघर्ष करने वाले तमाम तरह के आततायी, तानाशाह, कट्टरपंथी, और नारे लगाने वाले कुछ जनवादी भी अपने काम का लुत्फ उठाते हैं, और अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं। वे जानते हैं, और वे जो कुछ भी जानते हैं; उनके लिए वह हमेशा के लिए पर्याप्त है। वे किसी और चीज के बारे में पता नहीं लगाना चाहते, क्योंकि इससे उनके तर्कों की ताकत कम हो सकती है। कोई भी ज्ञान जो नए प्रश्नों की खोज नहीं करता है, जल्द ही समाप्त हो जाता है : यह जीवनानुकूल तापमान बनाए रखने में विफल हो जाता है। सबसे चरम मामलों में, जैसा कि प्राचीन और आधुनिक इतिहास बताता है, यह समाज के लिए घातक भी हो सकता है।

यही कारण है कि उस छोटे से वाक्यांश 'मैं नहीं जानता' को मैं बहुत महत्व देती हूं। यह छोटा है, लेकिन शक्तिशाली पंखों पर उड़ता है। यह हमारे जीवन को उन क्षेत्रों तक विस्तारित करता है, जिनमें से एक हमारे भीतर स्थित है और दूसरा बाहर, जहां हमारी छोटी पृथ्वी टंगी है। अगर आइजक न्यूटन ने खुद से नहीं कहा होता कि 'मैं नहीं जानता', उसके छोटे से बगीचे में उसकी आंखों के सामने सेब ओलों की तरह गिर सकते थे, और सबसे अच्छा होता कि वह उसे उठाने के लिए झपटते और फिर चाव से उन्हें भकोस सकते थे।

आंतरिक विस्मय...

सूत्र

आखिरकार, हम उन चीजों से चकित हैं, जो कुछ प्रसिद्ध और सार्वभौमिक रूप से स्वीकृत मानदंडों से विचलित होती हैं, उस स्पष्टता से विचलित होती हैं; जिसके हम आदी हो गए हैं। पते की बात यह है कि ऐसी कोई स्पष्ट दुनिया है ही नहीं। हमारा विस्मय आंतरिक है, और वह किसी और चीज से तुलना पर निर्भर नहीं है।

दूसरा पहलू

देश के 34 प्रांतों में से तीन-चौथाई हिस्से में लोग भंयकर सूखे का सामना कर रहे हैं, जबकि कुछ हिस्से इससे अब भी अछूते हैं।

अफगानिस्तान में बंजर खेत और खाली पेट

जलवायु परिवर्तन के प्रति सबसे अधिक संवेदनशील देशों में से एक अफगानिस्तान वर्षों से सूखे से जूझ रहा है, जिसके कारण कई गांव विस्थापित हो गए, तो कई बच्चे कुपोषण से ग्रस्त हैं। देश के 34 प्रांतों में से तीन-चौथाई हिस्से में लोग भयंकर सूखे का सामना कर रहे हैं, जबकि देश के कुछ कोने इस समस्या से अब भी अछूते हैं।

तालिबान से बहुत कम सहायता मिलने और अंतरराष्ट्रीय सहायता लगातार कम होने के बावजूद भी इन लोगों को भरोसा है कि एक दिन पानी जरूर आएगा। कई लोगों को यह विश्वास है कि उनकी भूमि पहले की तरह हरी-भरी हो जाएगी।

लिन्से एडारियो

सुबह जब लोग सोकर उठते हैं, तो देखते हैं कि उनके साथ का एक और परिवार गांव छोड़कर जा चुका है। लोग नौकरी, भोजन व अन्य संसाधनों की तलाश में गांव छोड़कर चले गए हैं।

शुष्क धरती के नीचे से कभी-कभार जो पानी निकलता है, वह खारा होने के कारण पीने लायक तो नहीं ही होता, इससे लोगों के हाथ भी फट जाते हैं।

लेकिन जहां तक नजर जा सकती है, अभी रेत का एक मंजर ही दिखाई देता है। सूखे तटों पर मायूस नावें ठिठकी हैं। शुष्क धरती के नीचे से कभी-कभार जो पानी निकलता है, वह खारा होने के कारण पीने लायक तो नहीं ही होता, इससे लोगों के हाथ भी फट जाते हैं। सुबह जब लोग सोकर उठते हैं, तो देखते हैं कि उनके साथ का एक और परिवार गांव छोड़कर जा चुका है। अगले गांव के सभी लोग नौकरी, भोजन व अन्य संसाधनों की तलाश में गांव छोड़कर चले गए हैं। चखांसूर जिले में 40 में से केवल चार परिवार बचे हैं, जिसमें आठ बच्चों के पिता अली इतने गरीब हैं कि कर्ज से खरीदे गए आटे से परिवार गुजारा कर रहा है। अली कहते हैं कि मेरे पास कोई चारा नहीं है, मैं खुदा की रहमत की प्रतीक्षा कर रहा हूं, क्योंकि मुझे पानी आने की उम्मीद है। 30 वर्षीय खंजर कुचाई कुछ वर्षों पहले वापस स्कूल जाने की सोच रहा था, लेकिन अब हालात इतने खराब हैं कि वह एक-एक दिन जीवित रहने की मशक्कत कर रहा है।

मोंडो कहती है, मैंने सूखे में अपने दोनों बच्चे खो दिए। एक बच्चे का गर्भपात करा दिया और दूसरा भूख से मर गया। मेरा नौ महीने का बच्चा हमेशा भूखा रहता है, क्योंकि हम उसे दूध नहीं दे सकते। अस्पताल के पास मोंडो समेत अन्य कमजोर माताएं भूखे बच्चों को गोद में लिए खाना मिलने का बेसब्री से इंतजार कर रही थीं। अफगानिस्तान में गर्म, शुष्क सर्दी के कारण जो बदलाव हुए हैं, उससे वहां रह रहे लोग पानी की एक-एक बूंद और दाने-दाने के लिए तरस रहे हैं। 29 वर्षीय सुहराब काशानी कहते हैं, हमारी इस जगह के साथ कई यादें जुड़ी हैं, क्योंकि यह जगह कभी हरी-भरी थी। हम बस पानी के इंतजार में अपने दिन-रात यहां जैसे-तैसे काट रहे हैं।

©The New York Times 2024

आंकड़े

प्रति सौ वर्ग किमी में फैक्टरी

हमारे देश में प्रति सौ वर्ग किलोमीटर में सबसे ज्यादा फैक्टरी दिल्ली में है, उसके बाद तमिलनाडु का स्थान आता है।

दिल्ली	219.92
तमिलनाडु	29.81
पंजाब	25.99
हरियाणा	25.49
केरल	20.03

(आंकड़े वर्ष 2020 के) स्रोत : (TII)

सत्य पर सदैव अटल रहना चाहिए। सत्य बात कहने में कदापि नहीं हिचकना चाहिए। सत्यवादी व सदाचारी से बड़ा दूसरा कोई धर्मात्मा नहीं होता।

सदैव न्याय करना

अंतर्यात्रा

शिव कुमार गोयल

खानदेश (महाराष्ट्र) के जिलाधीश लक्ष्मणराव देशमुख ईश्वर में दृढ़ विश्वास रखने वाले अधिकारी थे। वह अंग्रेजों के अन्यायपूर्ण आदेशों को मानने से इन्कार कर देते थे।

मई, 1883 में देशमुख स्वामी दयानंद सरस्वती जी के सत्संग के लिए अजमेर गए। स्वामी जी अजमेर से जोधपुर जा रहे थे। देशमुख ने उन्हें अपना परिचय दिया और कहा, मैं आपसे योग विद्या सीखने और सत्संग के लिए आया हूं।

स्वामी जी ने रास्ते में उन्हें वैदिक धर्म के महत्व से अवगत कराया। उन्होंने बताया, सत्य पर सदैव अटल रहना चाहिए। सत्य कहने में नहीं हिचकना चाहिए। सत्यवादी व सदाचारी से बड़ा दूसरा कोई धर्मात्मा नहीं होता।

जिलाधीश देशमुख जोधपुर में एक सप्ताह तक स्वामी जी के साथ रहे। स्वामी जी ने उनसे कहा, आप जिलाधीश हैं। किसी के साथ अन्याय न होने पाए और किसी असहाय का उत्पीड़न न हो-इसका पूरा ध्यान रखना परम धर्म और दायित्व होता है।

जिलाधीश देशमुख जब लौटने लगे, तो स्वामी जी के चरण स्पर्श कर बोले, जो वर्षों की साधना के बाद नहीं मिल सकता, वह मुझे आपके पावन सान्निध्य से मिल गया है। मैं आजीवन आपके बताए सद्मार्ग पर चलता रहूं, ऐसा आशीर्वाद दें।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला पुराने पन्नों से — 28 जनवरी, 1957

सीरिया के राष्ट्रपति अपने देश लौटे

सीरिया के राष्ट्रपति स्वदेश रवाना

सीरिया के राष्ट्रपति शुकरीअल कुवातली और उनके साथी दस दिन की भारत यात्रा पूरी करके अपने देश के लिए रवाना हो गए हैं। सांताक्रुज के हवाई अड्डे पर मुंबई के गवर्नर, मुख्यमंत्री और मुंबई के मेयर ने उन्हें विदा किया।

गर्मी से पहले ही प्यास से तरसने लगे शहर

दुनिया की लगभग 17 फीसदी आबादी वाले देश भारत के पास दुनिया के ताजा जल संसाधनों का मात्र चार फीसदी ही है।

सीमा जावेद

जल संकट

कवि रहीम ने कहा है, *रहिमन पानी राखिए बिन पानी सब सून।* लेकिन गर्मी ने अभी ठीक से दस्तक भी नहीं दी है कि इस साल कई शहरों में जल संकट मंडराने लगा है। होली के रंगों से नहाए बिना ही, फागुन में रंगों की फुहारों से सराबोर हुए बिना ही सूखे के हालात का सामना पड़ गया। जल संकट की जो स्थिति मई-जून के महीनों में होती थी, वह मार्च में ही दिखने लगी है और अभी से ही कई शहरों में लोग पानी की किल्लत से जूझने लगे हैं।

भारत का आईटी हब कहा जाना वाला बंगलूरू शहर इन दिनों हर रोज बीस करोड़ लीटर पानी की कमी झेल रहा है। बंगलूरू के अलावा देश में दिल्ली, मुंबई, हैदराबाद, भोपाल, कोलकाता, जयपुर, इंदौर जैसे अनेक शहर आज जल संकट की गंभीर समस्या से जूझ रहे हैं।

तेलंगाना उच्च न्यायालय ने चेतावनी दी है कि अगर हैदराबाद ने जल्दी ही जल संरक्षण के लिए उचित कदम नहीं उठाए, तो पानी के मामले में

उसका भी हाल 'सिलिकॉन वैली' बंगलूरू जैसा ही होगा। चेन्नई में वह समय अब भी सबको याद होगा, जब नल सूख गए थे, और पानी की कमी के चलते स्कूलों को बंद करना पड़ा था। जल स्रोतों की सुरक्षा के लिए पुलिस तैनात करनी पड़ी थी।

हाल ही में नीति आयोग द्वारा जारी रिपोर्ट में भी यह बात स्वीकार की गई है कि भारत के कई शहरों में जल संकट गहराता जा रहा है, और आने वाले वक्त में उसके और विकराल रूप लेने के आसार हैं। रिपोर्ट के अनुसार, जहां वर्ष 2030 तक देश की लगभग 40 फीसदी आबादी के लिए जल उपलब्ध नहीं होगा, वहीं 2020 तक देश में 10 करोड़ से भी अधिक लोग गंभीर जल संकट का सामना करने के लिए मजबूर थे। नीति आयोग की समग्र जल प्रबंधन सूचकांक (कंपोजिट वाटर मैनेजमेंट इंडेक्स) रिपोर्ट के अनुसार, देश के 21 प्रमुख शहरों में लगभग 10 करोड़ लोग जल संकट की भीषण समस्या से जूझ रहे हैं।

वास्तविकता यह भी है कि दुनिया की लगभग 17 फीसदी आबादी वाले देश भारत के पास दुनिया के ताजा जल संसाधनों का मात्र चार फीसदी ही है। भारत में लगभग 70 फीसदी सतही और ताजा जल के संसाधन सीवेज वेस्ट और कारखानों के अपशिष्ट से प्रदूषित हैं। वैश्विक जल गुणवत्ता सूचकांक में भारत 122 देशों में से 120वें स्थान पर है। भारत के कुल भौगोलिक क्षेत्र (32.8 करोड़ हेक्टेयर) में से 69 फीसदी (22.8 करोड़ हेक्टेयर) क्षेत्र सूखाग्रस्त है। ये आंकड़े हमारे देश में जल संकट की गंभीरता को साफ-साफ बयान करते हैं।

वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट (डब्ल्यूआरआई) द्वारा जारी नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार, देश में जलवायु परिवर्तन और ग्लोबल वार्मिंग की वजह से हो रहे बदलावों के कारण यदि पानी की मांग और आपूर्ति का संतुलन बिगड़ता है, तो उसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

दरअसल, जैसे-जैसे जलवायु परिवर्तन की पदचाप गहराती जा रही है, वैसे-वैसे वैश्विक तापमान (ग्लोबल वार्मिंग) बढ़ता जा रहा है। इसका असर मौसम के बदलते मिजाज के रूप में नजर आ रहा है। इसके चलते कहीं बारिश कम हो रही है, तो कहीं सर्दियों का मौसम अपेक्षाकृत गर्म हो रहा है। वर्ष 1975 से वर्ष 2000 के बीच जिस मात्रा और रफ्तार से हिमालय ग्लेशियर की बर्फ पिघल रही है, साल 2000 के बाद से वह मात्रा और रफ्तार दोगुनी हो गई है। वहीं दूसरी तरफ मौसम के इस बदलाव के कारण पहाड़ सर्दियों में बर्फ की चादर में लिपटने से वंचित हो रहे हैं।

वैज्ञानिकों ने आशंका जताई है कि वर्ष 2100 आने तक हिमालय के 75 फीसदी ग्लेशियर पिघल कर खत्म हो जाएंगे। इससे हिमालय के नीचे वाले भू-भाग में रहने वाले आठ देशों के करीब 200 करोड़ लोगों को पानी की किल्लत और बाढ़ के खतरे का सामना करना पड़ सकता है। इन देशों में भारत, पाकिस्तान, भूटान, अफगानिस्तान, चीन, म्यांमार, नेपाल और बांग्लादेश शामिल हैं। इन पर्वत शृंखलाओं के ग्लेशियर पिघलने से दिल्ली, ढाका, कराची, कोलकाता और लाहौर जैसे पांच महानगरों को पानी की भारी किल्लत का सामना करना होगा। इन नगरों की आबादी 9 करोड़ 40 लाख से ज्यादा है और इसी क्षेत्र में दुनिया की सबसे बड़ी 26,432 मेगावॉट क्षमता वाली पनबिजली परियोजना है।

जाहिर है, जलवायु परिवर्तन के कारण पानी की समस्या से निपटने के लिए हमें जल संरक्षण के उपायों पर गंभीरता से विचार करना होगा और पर्यावरण सुरक्षा के उपाय करने होंगे।

दैनिक जागरण

समय की कसौटी बहुत खरी होती है

आनंद शर्मा की आपत्ति

एक ऐसे समय जब राहुल गांधी जातिवार गणना पर खूब जोर देने में लगे हुए हैं, तब कांग्रेस के वरिष्ठ नेता आनंद शर्मा ने यह चिट्ठी लिखकर पार्टी को असहज करने का ही काम किया कि ऐसा किया जाना इंदिरा गांधी और राजीव गांधी की विरासत का अपमान करना होगा। पूर्व केंद्रीय मंत्री आनंद शर्मा एक समय कांग्रेस के उस असंतुष्ट समूह के सदस्य थे, जिसे जी-23 के नाम से जाना जाता था। समय के साथ यह समूह बिखर गया। इसकी कोई आशा नहीं कि आनंद शर्मा की चिट्ठी के बाद कांग्रेस जातिवार गणना की अपनी मांग से पीछे हटेगी, लेकिन ऐसे प्रश्न अवश्य उठेंगे कि अभी हाल तक इससे इन्कार करने वाली पार्टी यकायक इस पर इतना जोर क्यों दे रही है? जातिवार गणना अंग्रेजी सत्ता ने कराई थी। आजादी के बाद जब नेहरूजी प्रधानमंत्री बने तो उन्होंने उसकी जरूरत को खारिज कर दिया। उनके बाद इंदिरा गांधी और राजीव गांधी ने भी कभी जातिवार गणना की जरूरत नहीं समझी। सहयोगी दलों के दबाव में मनमोहन सरकार ने 2011 में जातिवार जनगणना कराई तो, लेकिन उसके आंकड़े जारी नहीं किए। एक लंबे समय से कई क्षेत्रीय दल जातिवार गणना की मांग करते आ रहे हैं, लेकिन कांग्रेस ने कभी इस मांग को महत्व नहीं दिया। पिछले कुछ समय से राहुल गांधी ने इसे कांग्रेस का एक प्रमुख मुद्दा बना लिया है। इस मामले में वह क्षेत्रीय दलों को भी मात देते दिख रहे हैं और इस क्रम में राहुल गांधी यह भी पूछ रहे हैं कि अमुक-अमुक संस्थाओं में कितने प्रतिशत ओबीसी हैं?

कांग्रेस की ओर से जातिवार गणना की जो मांग की जा रही है, उसका एकमात्र उद्देश्य अन्य पिछड़े वर्गों यानी ओबीसी के वोट हासिल करना है, न कि उनके आर्थिक-सामाजिक उत्थान को बल देना। इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि राजीव गांधी ने मंडल आयोग की सिफारिशों पर अमल का खुलकर विरोध किया था। इससे ओबीसी वोट बैंक कांग्रेस से छिटक गया। अब राहुल गांधी जातिवार गणना की मांग पर जोर देकर उसे अपने पाले में लाना चाह रहे हैं। इसमें वह शायद ही सफल हों, क्योंकि लोगों को यह समझ नहीं आ रहा कि कर्नाटक की पिछली कांग्रेस सरकार ने जो जातिगत सर्वेक्षण कराया था, उसके आंकड़े क्यों नहीं जारी हो रहे हैं? यह पहली बार नहीं, जब कांग्रेस के किसी नेता ने जातिवार गणना का विरोध किया हो। इसके पहले अभिषेक मनु सिंघवी भी इस पर आपत्ति जता चुके हैं। बाद में उन्होंने अपनी आपत्ति वापस ले ली थी। चूंकि सामाजिक उत्थान की अनेक योजनाएं इससे तय होती हैं कि पिछड़ी कही जाने वाली जातियों की आर्थिक स्थिति क्या है, इसलिए सैद्धांतिक तौर पर तो यह ठीक है कि जातिवार गणना के सही आंकड़े सामने आएं, लेकिन समस्या यह है कि जातीय जनगणना की मांग के बहाने जातिवादी राजनीति को खाद-पानी देने का काम किया जा रहा है।

खराब हो रही छवि

साइबर ठगी के लिए बदनाम जामताड़ा के ठगों ने अब झारखंड के कई अन्य जिलों में भी अपनी शाखाएं खोल दी हैं। देवघर, धनबाद, गिरिडीह आदि जिलों में इन ठगों के कारनामे पूर्व में प्रकाश आ चुके हैं। अब हजारीबाग का बरकट्ठा प्रखंड साइबर ठगी का नया गढ़ के रूप में उभरा है। पिछले चार वर्षों में यहां से 130 साइबर ठग पकड़े गए हैं। इसी तरह राजधानी रांची में भी साइबर ठगी के कई ठिकाने बन चुके हैं। दो दिन पूर्व ही अंतरराष्ट्रीय काल सेंटर के नाम पर बड़े ठग गिरोह का पर्दाफाश यहां हुआ है। प्रारंभिक जांच में इस काल सेंटर से इंग्लैंड और आस्ट्रेलिया के तीन लाख से अधिक नागरिकों के व्यक्तिगत डाटे का दुरुपयोग कर उन्हें धमकाने तथा वसूली का मामला सामने आया है। यह चिंतनीय है और इससे प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों वाले राज्य झारखंड की छवि देश-दुनिया में खराब हो रही है। दूसरी ओर इससे निपटने के लिए साइबर थाना के पास मानव बल समेत अन्य संसाधनों की कमी है, जिसका फायदा ये साइबर गिरोह उठा रहे हैं। चिंता की बात यह भी कि अब ये ठग राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों से निकलकर शहरों की ओर आने लगे हैं। लाटरी निकलने, नौकरी लगने, केवाइसी अपडेट, विभिन्न फर्जी हेल्पलाइन और प्रलोभन भरे लिंक भेज कर ये लोगों को फांस रहे हैं और उनके खाते में सेंधमारी कर रहे हैं। जरूरत है कि समय रहते शासन-प्रशासन इन ठगों पर नकेल कसें, नहीं तो लोगों के खाते खाली होते रहेंगे और राज्य की बदनामी का यह दायरा बढ़ता चला जाएगा। इस मामले में बड़े पैमाने पर जागरूकता अभियान चलाया जाना भी वर्तमान की मांग है। लोगों को भी जागरूक होना पड़ेगा। फोन पर किसी भी अनजान व्यक्ति को अपनी निजी जानकारी न दें।

> प्रचुर प्राकृतिक संसाधनों वाले राज्य झारखंड की छवि देश-दुनिया में खराब हो रही है

आर्थिकी को बल देती आधी आबादी

डा. ऋतु सारस्वत

महिलाओं के जीवन को सुगम और सुरक्षित कर महिला सशक्तीकरण की एक नई परिभाषा लिखने में मदद मिली है

अवधेश राजपूत

लोकसभा चुनाव का उद्घोष हो चुका है। आगामी पांच वर्षों के लिए शासन की बागडोर किसके हाथ में होगी, इसका उत्तर तो भविष्य के गर्भ में छुपा है, परंतु बीता एक दशक भारत को क्या देकर गया है, उसका विश्लेषण उपयोगी होगा। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष यानी आइएमएफ के अनुसार प्रबल संभावना है कि भारत 2027 में दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था बन जाएगा। साथ ही पांच वर्षों में वैश्विक विकास में भारत का योगदान दो प्रतिशत बढ़ जाएगा। ये रुझान यही दर्शाते हैं कि भारत मजबूती के साथ आर्थिक विकास की गति की ओर उन्मुख है। इस विमर्श में एक स्वाभाविक प्रश्न यही सामने आता है कि बीते एक दशक में ऐसा क्या हुआ कि आर्थिक विकास का प्रवाह तीव्र गति से बढ़ा है? अगर यह कहा जाता है कि इसके पीछे सरकार की आर्थिक नीतियां हैं तो क्या 2014 से पूर्व आर्थिक विकास को गति देने के लिए रणनीति नहीं बनीं? यकीनन आजादी के बाद से ऐसी कई योजनाओं एवं नीतियों का निर्माण हुआ, जिससे भारत एक सुदृढ़ आर्थिक धरातल पर खड़ा हो सके, लेकिन इसके बावजूद उन नीतियों के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए। ऐसे में उन कारणों को जानना आवश्यक है, जिनके चलते बीते एक दशक से पूर्व आर्थिक विकास की गति अपेक्षित रूप से तेज नहीं थी?

सर्वप्रथम तो हमें यह समझना होगा कि आर्थिक विकास स्वयं में स्वतंत्र पहलू नहीं है, बल्कि इसके निर्धारण में अन्य पहलुओं की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। दूसरा, आर्थिक विकास तब तक अपनी अपेक्षित गति से नहीं बढ़ सकता, जब तक उसमें आधी-आबादी यानी महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी न हो। इस विमर्श में तीसरा बिंदु जो कि भारतीय अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है और वह यह कि इसमें ग्रामीण भारत की प्रतिभागिता हो। ऐसा इसलिए, क्योंकि भारत की 70 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में निवास करती है। अतः उसकी प्राथमिकताएं और आवश्यकताएं जब तक आर्थिक विकास की रणनीति में केंद्रीय स्थान नहीं पातीं तब तक आत्मनिर्भर एवं सशक्त भारत की कल्पना व्यर्थ है। क्या आजादी के छह दशकों तक ग्रामीण विकास तथा महिला कल्याण केंद्रित योजनाएं क्रियान्वित नहीं हुईं? निश्चित ही ऐसी योजनाएं बनीं और महिला स्वावलंबन के लिए अनेक वित्तीय प्रविधान भी प्रस्तावित हुए, परंतु महिला सशक्तीकरण का प्रश्न अनसुलझा ही रहा।

आर्थिक स्वावलंबन आधी आबादी के सशक्तीकरण की अपरिहार्य शर्त है और यह तभी संभव है जब महिलाओं के भीतर 'स्व' का भाव व्याप्त हो। आत्मसम्मान का अभाव अक्षमता और उदासीनता को जन्म देता है। दशकों से आधी आबादी को निरंतर यह बोध कराया गया कि वे समाज की वह 'जिम्मेदारी' हैं, जिनका सामाजिक और आर्थिक सशक्तीकरण में योगदान शून्य है। मूल्यहीनता के इस बोध ने आधी आबादी से गरिमामय जीवन छीन लिया। उनकी पीड़ा, उनकी समस्याएं किसी के भी चिंतन-मनन का विषय नहीं बनीं। अंधेरे में शौच के लिए सुरक्षित स्थान की खोज, ईंधन की जुगत में जंगलों में भटकना, पानी के लिए मीलों चलना तथा स्वच्छता की परिभाषा और महत्व से अनभिज्ञ माहवारी के समय अपराधबोध से ग्रस्त जीवन व्यतीत करने की विवशताएं किसी भावनात्मक कथानक का लेखन नहीं, अपितु आधी आबादी के जीवन की वह कठोर सच्चाई थी, जिसे नकारा नहीं जा सकता। जीवन की आपाधापी के बीच स्वावलंबन उनके लिए कोरी कल्पना से अधिक कुछ नहीं था। दशकों से चली आ रही ऐसी पीड़ाओं को 15 अगस्त, 2014 के दिन लालकिले की प्राचीर से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के इन शब्दों ने भेद दिया, 'क्या कभी हमारे मन को पीड़ा हुई कि आज भी हमारी माताओं और बहनों को खुले में शौच के लिए जाना पड़ता है? 'डिग्निटी आफ वीमेन' क्या यह हम सब का दायित्व नहीं...' यह आह्वान विशुद्ध रूप से गैर-राजनीतिक था। इन शब्दों ने हमारे देश में आधी आबादी की दशा और दिशा बदलने का काम किया।

कई अध्ययन भी इसकी पुष्टि करते हैं। 'एक्सेस टू टायलेट्स एंड द सेफ्टी कन्वीनियंस एंड सेल्फ रिस्पेक्ट आफ वीमेन इन इंडिया' शीर्षक से प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार खुले में शौच से मुक्ति ने महिलाओं के भीतर आत्मविश्वास जागृत किया है और उनका वह समय जो शौच के लिए सुरक्षित स्थानों की खोज में व्यय होता था, अब बचने लगा है। गरिमामय जीवन के अध्याय में एक नवीन पृष्ठ तब जुड़ा जब 'उज्ज्वला योजना' क्रियान्वित हुई। इस योजना ने महिलाओं के घंटों के उस परिश्रम पर विराम लगा दिया, जो आंखों और सांसों को कष्ट देने वाले ईंधन की खोज में करना पड़ता था। यह योजना जीवनरक्षक भी सिद्ध हुई। एक शोध के अनुसार विश्व भर में ईंधन के रूप में इस्तेमाल करने से निकलने वाला धुआं सालाना करीब 37 लाख लोगों की जान ले रहा है। अगस्त 2019 भी महिलाओं के गरिमामय जीवन के लिए मील का पत्थर साबित हुआ, जब 'हर घर नल से जल' योजना आरंभ हुई। शोध बताते हैं कि अनेक ग्रामीण महिलाएं पानी इकट्ठा करने के लिए एक दिन में 10 मील तक पैदल चलती थीं। पानी लाने के लिए घंटों का सफर तय करना महिलाओं को आय अर्जित करने वाले व्यवसायों में संलग्न करने में सबसे बड़ी बाधा थी, लेकिन बीते चार वर्षों में तस्वीर बदल गई। योजना आरंभ होने से पूर्व ग्रामीण क्षेत्र के 16.79 प्रतिशत घरों में नल थे जो 2024 में बढ़कर 75.18 प्रतिशत हो गए।

स्वच्छ जल तक पहुंच में निवेश, महिलाओं और लड़कियों के सशक्तीकरण में प्रत्यक्ष निवेश है। यह महिलाओं को प्रतिनिधित्व प्रदान करता है। स्वच्छता, जल की सहज उपलब्धता और ईंधन ने आधी आबादी को 'पूर्ण शक्ति' प्रदान की, क्योंकि इन योजनाओं ने शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक सशक्तता का मार्ग तो प्रशस्त किया ही, उनके उस समय को 'आर्थिक स्वावलंबन' की ओर उन्मुख किया, जो पूर्व में निरर्थक व्यय होता था। जैविक कृषि, पशुपालन तथा हथकरघा उद्योग में ग्रामीण महिलाएं संलग्न होकर आत्मनिर्भर भारत की सबसे मजबूत कड़ी के रूप में उभर रही हैं। तमाम राजनीतिक विमर्शों से परे इसे स्वीकार करना चाहिए कि बीते एक दशक में आधी आबादी के जीवन को सुगम और सुरक्षित कर महिला सशक्तीकरण की नई परिभाषा लिखी गई है। इसने अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण के साथ महिलाओं के आत्मबल को बढ़ाने का काम किया है।

(लेखिका समाजशास्त्र की प्रोफेसर हैं)

response@jagran.com

जल संकट को लेकर चेतने का समय

रमन कांत

जल संकट से बचने के लिए 'जहां संकट-वहीं समाधान' की रणनीति पर काम करना होगा

जल संकट से जूझने लगे शहर। प्रेट्र

भारत एक बड़ी आबादी वाला राष्ट्र है। यहां विश्व की करीब 18 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, जबकि क्षेत्रफल विश्व की कुल भूमि का करीब पौने तीन प्रतिशत ही है। इतनी कम भूमि पर इतनी अधिक आबादी के लिए विश्व के कुल जल संसाधन का मात्र चार प्रतिशत ही उपलब्ध है। इतनी बड़ी आबादी की पानी और अन्य जरूरतें पूरी करने में देश के संसाधन हांफने लगे हैं। भारत जहां जल संकट के मुहाने पर आ खड़ा हुआ है, वहीं प्रदूषण की मार से भी त्राहिमाम कर रहा है। यूं तो भारत में छोटी-बड़ी करीब 40 से 42 लाख जल संरचनाएं अर्थात तालाब, जोहड़ और बावड़ी आदि मौजूद हैं, लेकिन बेरुखी एवं लालच के कारण अधिकतर जल संरचनाओं का स्वरूप विकृत हो चुका है। उनमें जल ग्रहण और जल पुनर्भरण करने की क्षमता भी कम हो चुकी है। यह स्थिति तब है जब भारत में मौजूद प्रत्येक जल स्रोत को सम्मान देने की परंपरा रही है। पानी का आदर हमारी पूजा पद्धतियों में भी शामिल है। कुएं, तालाब या अन्य जल स्रोत बनाने से पहले आह्वान किया जाता है कि 'हे जल के देवता आप यहां स्वच्छ स्रोत के रूप में उपस्थित होकर हमारा कल्याण करें', लेकिन पिछले तीन-चार दशकों से भारत के जल संसाधनों में लगातार गिरावट देखी जा रही है। चिंता की बात यह भी है कि वे भयावह रूप से प्रदूषित होते जा रहे हैं।

अत्यधिक जल दोहन एवं उस अनुपात में पुनर्भरण न हो पाने के कारण भारत में हर वर्ष जल संकट गहराता दिखता है। यह एक प्रथा सी बन गई है कि अगर किसी स्थान पर पानी की कमी है तो दूर से नदी का पानी वहां पर ले आओ। ऐसा बड़े शहरों में खूब किया जा रहा है। इसका दुष्परिणाम जहां नदियों को भुगतना पड़ रहा है, वहीं नदी का भूजल स्तर एवं वहां की आबादी भी इससे प्रभावित हो रही है। यह समाधान कभी भी स्थायी नहीं हो सकता। यह चिंताजनक है कि गर्मियों के पहले ही बेंगलुरु के बाद हैदराबाद और कुछ अन्य शहरों से जल संकट की खबरें आ रही हैं। जल संकट के स्थायी समाधान के लिए हमें 'जहां संकट-वहीं समाधान' की रणनीति पर काम करना होगा। देश में यह कार्य अधिकतर राज्यों में संभव भी है, क्योंकि वर्षा तो हर जगह होती है। जहां पर 200 से 600 मिलीमीटर या उससे अधिक वार्षिक वर्षा होती है, वहां यदि उसके जल को संचित करने के साधन बना लिए जाएं तो उस क्षेत्र की आबादी के लिए पानी का इंतजाम किया जा सकता है।

हमें जल प्रदूषण को लेकर भी सचेत होना होगा। जल प्रदूषण का एक बड़ा कारण उद्योगों से निकलने वाला अपशिष्ट है। अधिकतर फैक्ट्रियां दूषित जल को शोधित किए बिना उसे नदियों में जाने देती हैं। कुछ उद्योग तो प्रदूषित पानी को बोरिंग करके जमीन के अंदर डाल देते हैं, जो भूजल को दूषित करता है। उद्योगों को इसके लिए बाध्य किया जाना चाहिए कि वे अपने यहां उपयोग में लाए गए पानी को शोधित करके उसे पुनः उपयोग में लाएं। शहरों से निकलने वाले कुल घरेलू जल का मात्र 10-20 प्रतिशत ही शोधित हो पता है। शेष गैर शोधित घरेलू बहिस्राव अंत में नदियों में ही चला जाता है। इसी कारण हमारी नदियां भयंकर प्रदूषण से ग्रस्त हैं। उनमें बहने वाले प्रदूषित पानी के कारण हमारा भूजल भी प्रदूषित हो रहा है। इसे रोकने के लिए नगर निकायों को ऐसी व्यवस्था बनानी होगी, जिससे सीवेज शोधन के बाद निकलने वाले पानी को कृषि कार्यों या फिर उद्योगों में उपयोग किया जा सके। यह भी समय की मांग है कि कृषि में भूजल के उपयोग को कम करने के उपाय किए जाएं। इसके लिए फसलों की सिंचाई का तरीका बदलने के साथ किसानों को कम पानी वाली फसलों को अपनाना होगा। अगर किसान धान उगाते हैं और उसे देश से बाहर बेचा जाता है तो एक प्रकार से हम अपने पानी का मुफ्त निर्यात कर देते हैं, क्योंकि धान उत्पादन करने में काफी अधिक पानी खर्च होता है। धान के विकल्प के तौर पर दालें उगाना बेहतर है, जिनमें कम पानी खर्च होता है। किसानों को धीरे-धीरे अपनी कृषि को रसायनमुक्त करने की दिशा में भी कदम बढ़ाना चाहिए। इससे भी पानी की बचत होगी।

जल संकट के स्थायी समाधान के लिए हमें अपनी पुरातन पद्धतियों की ओर लौटना होगा और इस क्रम में जल संरक्षण के तौर-तरीकों को पुनर्जीवित करना होगा। देश में सभी जल पुनर्भरण स्रोतों को पुनर्जीवित करने का एक कार्यक्रम बनाकर उसे समाज के सहयोग से लागू करना चाहिए। छोटे एवं बड़े शहरों में वर्षाजल संरक्षण-संचयन को जमीन पर उतारने के लिए युद्धस्तर पर कार्य करने की जरूरत है। वर्षा जल के भूजल में पहुंचने से उसका स्तर तो बढ़ेगा ही, उसके प्रदूषण में भी कमी आएगी। भारत को जल संकट से बचाने के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक नागरिक सहयोग करे। यह सभी का फर्ज है कि जल संरक्षण की दिशा में अपने स्तर पर कुछ न कुछ प्रयास करे। भारत ने अपना वाटर विजन-2047 प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार जब देश आजादी के सौ वर्ष पूरे करेगा, तब पानी के मामले में आत्मनिर्भर हो जाएगा। ऐसा तभी होगा जब हमारे जल स्रोत पानी से समृद्ध होंगे और हमारी नदियां निर्मल एवं अविरल बहेंगी। इसके लिए अभी से ठोस प्रयास आवश्यक हैं। वास्तव में देश को एक सकारात्मक जल आंदोलन की आवश्यकता है। हमारे पास बहुत ज्यादा समय नहीं है। अब चेतने का वक्त है। अगर इस समय पानी को बचाने के लिए कुछ करने से चूक गए तो देर हो जाएगी।

(लेखक भारतीय नदी परिषद के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

हम एक हैं

प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह दूसरे मानव की रक्षा करे। मानवता ही सबसे बड़ा धर्म है। मानव विकास प्राथमिक कर्मयोग है। आज विश्व में हाहाकार मचा है। मानव ही मानव के रक्त का प्यासा बन बैठा है। गलाकाट प्रतियोगिता ने उनको एक-दूसरे का शत्रु बना दिया है। भौतिकवाद और पदार्थवाद ने लोगों को असहिष्णु और अमर्यादित बना दिया है। इस कारण संसार जल रहा है। न कोई सत्य को समझना चाहता है, न ईश्वर को देखना चाहता है। मानव अपने को भी पहचानना नहीं चाहता। इसलिए सर्वत्र अशांति का रोग और अव्यवस्था का भोग है।

इसके निदान के लिए हम एक हैं का भाव हर मानव का स्वधर्म होना चाहिए। इसका अर्थ अपने आत्मा के अनुश्रवण से है। यदि संसार में हर एक मनुष्य स्वधर्म निभाए, अपने आत्मा की बात सुने तो कोई विकार न होगा, कोई शिकार न होगा। सबसे पहले तो स्वधर्म ही मानना चाहिए, तत्पश्चात कोई अन्य धर्म। वैसे भी स्वधर्म ही सदैव अपने निकटतम रहता है। अर्थात आत्मा ही सबसे बड़ा धर्म है। जो मानव आत्मा की आवाज सुनने का सामर्थ्य रखता है, वही महामानव है।

आत्मा सदा-सदा से पुकार रहा है कि हम सब एक हैं। मन और बुद्धि अवश्य इसे विचलित करते हैं। दोनों हर मानव का धर्म पृथक-पृथक बताते हैं। जबकि शरीर में व्याप्त चेतना मानवता को ग्रहण करती है, जो शुद्ध जीवन पद्धति है। मानव के लिए मानव, यही आत्मयोग है। यही आत्मबोध है। आत्म अनुशीलन, आत्म निरीक्षण, आत्म साक्षात्कार से प्रकट होगा कि मानव ईश्वर का प्रतिनिधि है। मानव तभी ईश्वर का दूत होता है, जब आत्मा के सन्निकट होता है। सभी ऐसा अनुभव करें तो मानव-मानव के मित्र बन जाएंगे। वे एक-दूसरे के हितैषी और मित्र बन जाएंगे। फिर आकाश गूंज उठेगा-हम एक हैं।

डा. राघवेंद्र शुक्ल

कानून का न हो दुरुपयोग

सुनीता मिश्रा

देश में महिलाओं को अपराधों से बचाने के लिए कई कानूनी कवच दिए गए हैं, लेकिन कुछ महिलाएं उनका दुरुपयोग कर रही हैं

गत दिनों दिल्ली हाई कोर्ट ने महिला सुरक्षा से जुड़े कुछ कानूनों के दुरुपयोग पर चिंता जाहिर करते हुए कहा कि पति और ससुरालवालों के खिलाफ पत्नी द्वारा दायर की गई शिकायत या एफआइआर की जांच करनी चाहिए कि आरोप 'क्लेवर ड्राफ्टिंग' (चतुराई से तैयार) का मामला है या इसमें कुछ सच्चाई भी है। अदालत ने आइपीसी की धारा 498-ए, 406 और 34 के तहत पति के मामा और चाची के खिलाफ 2017 में पत्नी द्वारा दर्ज की गई एफआइआर रद करते हुए यह टिप्पणी की। महिला की शादी वर्ष 1997 में हुई थी, लेकिन एफआइआर 2017 में दर्ज हुई। महिला ने आरोप लगाया था कि शादी के बाद से ही पति और उसके रिश्तेदार उसे दहेज के लिए परेशान कर रहे थे और उसके साथ मारपीट करते थे।

देश में महिलाओं को तमाम तरह के अपराधों, प्रताड़ना और घरेलू हिंसा से बचाने के लिए कई कानूनी कवच दिए गए हैं, लेकिन कुछ महिलाएं इन कानूनों का दुरुपयोग कर रही हैं। इसे लेकर सुप्रीम कोर्ट समय-समय पर तल्ख टिप्पणी भी कर चुका है। वर्ष 2022 में शीर्ष न्यायालय ने कहा था, 'दहेज प्रताड़ना से बचाव के लिए कानून में जोड़ी गई आइपीसी की धारा 498-ए का इस्तेमाल एक हथियार की तरह हो रहा है। शिकायतकर्ता महिला यह भी नहीं सोचती कि बेवजह मुकदमे में फंसे लोगों पर उसका क्या असर होगा।' भारतीय दंड संहिता की धारा 498-ए महिला के पति और उसके रिश्तेदारों द्वारा संपत्ति अथवा कीमती वस्तुओं के लिए अवैधानिक मांग के मामले से संबंधित है, जिसमें अधिकतम तीन साल की कैद और जुर्माने का प्रविधान है, लेकिन अब यही धारा भड़ास निकालने का जरिया बन गई, जिससे तमाम परिवार खंडित हो रहे हैं। पिछले कुछ वर्षों में कई ऐसे मामले सामने आ चुके हैं। यह सच है कि आज भी देश में कई महिलाओं को दहेज को लेकर यातनाएं सहनी पड़ती हैं। उनकी हत्या भी कर दी जाती है। इससे संरक्षण प्रदान करने के लिए ही कानून में सख्त प्रविधान किए गए हैं, लेकिन कानून के बढ़ते दुरुपयोग ने महिलाओं के प्रति संदेह को बढ़ा दिया है।

ज्ञात हो कि गिरफ्तार किए गए लोगों में कई बेकसूर ऐसे होते हैं, जो समाज में अपनी बदनामी होने के बाद आत्महत्या भी कर लेते हैं। यही नहीं इस मामले में आमतौर पर पति के साथ उसके माता-पिता, भाई-बहन, भाभी और दूर के रिश्तेदारों को भी आरोपित बना दिया जाता है। ऐसे में झूठे आरोपों का सामना कर रहे परिवार को जो पीड़ा और कष्ट उठाना पड़ता है, उसकी भरपाई कौन करेगा? अब समय आ गया है पुरुषों की सुरक्षा और उनकी प्रतिष्ठा बहाल किए जाने के लिए कानून बनाए जाएं। इस बात को बिल्कुल नहीं भूलना चाहिए कि पुरुष भी इसी समाज का अंग हैं।

(लेखिका स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

चुनावी रेवड़ियों पर पाबंदी

'चुनावी रेवड़ियां' संपादकीय टिप्पणी में सही कहा गया है कि आम लोग भी यह समझें कि वे रेवड़ियों के फेर में आकर अपना और साथ ही देश का अहित ही करते हैं। रेवड़ी संस्कृति पर रोक तत्काल प्रभाव से लगनी चाहिए जिसे कारगर ढंग से केवल आमजन ही सुनिश्चित कर सकते हैं। लोकसभा के आम चुनाव की समय-सारिणी घोषित हो चुकी है। अब जनता के दरबार में सभी राजनीतिक दल अपनी हाजिरी लगाने जुटेंगे। इस अमृतकाल में हो रहे दूरगामी परिणाम वाले इस आम चुनाव में वोटर देश के प्रति अपनी प्रतिबद्धता दर्शाते हुए जरूर गौर करें कि भारत को विकसित राष्ट्र बनाने के लिए शिक्षा और चिकित्सा तथा स्वस्थ परिवेश जैसे मुद्दों को छोड़कर वे किसी मुफ्तखोरी का समर्थन न करें। शिक्षित एवं स्वस्थ समाज ही उन्नत राष्ट्र का निर्माण करता है। इसके लिए जरूरी है कि जरूरतमंद को अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए अनावश्यक रूप से न जूझना पड़े। जो दल विकसित राष्ट्र की स्पष्ट अवधारणा प्रस्तुत करते हुए अपनी नीति के प्रारूप का अपने संकल्प/घोषणापत्रों में उल्लेख करें और उसे धरातल पर उतारने की बात करें, केवल उन्हीं का समर्थन किया जाए। युवाशक्ति बहुल अपने देश के लिए आवश्यकता है कि अधिकाधिक अवसरों का सृजन किया जाए, 12वीं तक की स्कूली शिक्षा के दौरान युवाओं का कौशल विकसित किया जाए, ताकि रोजगार के लिए उन्हें भटकना न पड़े। केवल सरकारी नौकरियों के झूठे वादों पर विश्वास न किया जाए। सभी जानते हैं कि इतनी बड़ी आबादी को सरकारी नौकरियों में खपाना असंभव है। स्वरोजगार और स्टार्टअप के जितने अधिक अवसर पोषित होंगे, उतनी ही गति से उसी अनुपात में बेरोजगारी की समस्या पर काबू पाया जाएगा। यह बेहतरीन अवसर है कि देशहित में वोट दिया जाए, स्वार्थांध होकर नहीं। yograj62@gmail.com

मुफ्तखोरी की संस्कृति घातक

''चुनावी रेवड़ियां'' शीर्षक संपादकीय में फ्री के चुनावी वादों और उनसे उपजने वाली समस्याओं का ठीक विश्लेषण किया गया है। भारतीय राजनीति में फ्री के वादे एक बड़ी समस्या बनकर आए हैं। कुछ पार्टियां तो इसी वादे के बल पर सरकार में हैं और अन्य पार्टियों ने भी सत्ता पर काबिज होने का इसे कारगर उपाय मान लिया है। लगभग सभी पार्टियां मुफ्त के वादे कर रही हैं, बिना इस बारे में सोचे कि ये वादे व्यावहारिक हैं या नहीं। इन्हें पूरा कैसे किया जाएगा और इसके लिए धन कहां से आएगा। इसका देश की अर्थव्यवस्था पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसकी चिंता किसी भी पार्टी को नहीं है। उनका एकमात्र उद्देश्य सत्ता का स्वाद लेना है। इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि इन लोकलुभावन वादों की घोषणा करते समय उसके राजस्व प्रबंधन का ब्लू प्रिंट उनके पास नहीं रहता। हम सबको सुप्रीम कोर्ट से ऐसे ही निर्णय की आशा है, जिससे आमदनी अठन्नी और खर्च रुपैया की संस्कृति पर अंकुश लगेगा। अच्छा हो कि इस पर कोई सार्थक समाधान निकल आए।

सिद्धनाथ सिंह, दिल्ली

शानदार भारतीय विदेश नीति

आम आदमी के सरोकार साधती विदेश नीति शीर्षक आलेख में श्रीराम चौलिया ने भारतीय विदेश नीति की सराहना करते हुए कहा है कि देश में पेट्रोल और डीजल की कीमतें उतनी नहीं बढ़ीं, जितने दाम वैश्विक बाजारों में चढ़ गए थे। मोदी युग में भारत की विदेश नीति पूरी तरह बदल गई है। श्रीलंका पर हमारी नीति से दुनिया को एक मजबूत संदेश गया। खाड़ी देशों के साथ हमने रिश्ते मजबूत किए। अमेरिका के साथ रिश्ते बहुत मजबूत हुए हैं। विदेशी निवेश के कुछ बड़े प्रस्ताव आए हैं। विदेश मंत्री एस जयशंकर के शब्दों में अब भारत को देखने का दुनिया का नजरिया बदल गया है। अब दूसरे देश भारत में पिछले कुछ सालों में हुए सकारात्मक बदलाव को लेकर उत्सुक हैं और हमारे बारे में बातें कर रहे हैं। यूक्रेन से लेकर गाजा जंग तक हमने दुनिया को दम दिखाया है। विदेश नीति एक ऐसा क्षेत्र है, जहां हमें साथ मिलकर काम करना चाहिए। मोदी सरकार यही कर रही है।

युगल किशोर राही, ग्रेटर नोएडा

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :

दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त, पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन, नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त, प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 011-43166300, नोएडा कार्यालय : 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।

****

विदेश में पढ़ने जा रहे हैं तो रहें सावधान

शिक्षाः कई एजेंट विदेश में शिक्षा के सुहावने सपने का झाँसा दे कर भोले-भाले छात्रों को ठगने में चूकते नहीं है।

■ रजनीश कपूर

हमारे देश से उच्च शिक्षा पाने के लिए विदेश जाना कोई नई बात नहीं है। विदेश से पढ़ाई करने वाले भारतीयों की संख्या काफ़ी है। जैसे-जैसे समय बदला दुनिया के कई देशों में नामी नए शैक्षणिक संस्थान व विश्वविद्यालय खुले गये। इधर भारत में भी जनसंख्या बढ़ने के कारण यहाँ के विद्यार्थियों को प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थाओं में दाख़िला नहीं मिल पाता। इसी के चलते देश के कई हिस्सों से विद्यार्थियों में पढ़ाई के लिए विदेश जाने की होड़ सी है। परंतु क्या सभी विद्यार्थियों के हिस्से अच्छे संस्थान और उपयोगी डिग्री आती है? क्या देश छोड़ कर जाने वाले विद्यार्थियों के साथ कुछ एजेंट धोखा तो नहीं करते? आजकल के माहौल में विदेश में पढ़ाई करने जाने वाले विद्यार्थियों को कई तरह सावधानी बरतने की भी ज़रूरत है।

विदेशों में उच्च शिक्षा पाने के लिए भारत से छात्र दुनिया के कोने कोने में जाते हैं। इनमें सबसे ज़्यादा लोकप्रिय देश यूके, अमेरिका, कनाडा, ऑस्ट्रेलिया आदि हैं। आँकड़ों के अनुसार साल 2023 में विदेश में पढ़ाई के लिए जाने वाले भारतीयों की संख्या क़रीब 13 लाख थी। ऐसा नहीं है कि विदेशों में पढ़ना सस्ता होता है। जो भी छात्र विदेशों में पढ़ाई के लिए गये उन्होंने प्रतिवर्ष औसतन 32 लाख रुपये खर्च किए है। परंतु इतना ख़र्च करने के बावजूद क्या उन्हें वो सब मिला जिसकी खोज में ये अपना घरबार छोड़ कर गये? क्या विदेशों में पढ़ाई करने वाले सभी भारतीयों के सपने सच होते हैं?

ऐसा नहीं है कि भारत में अच्छे कॉलेज और यूनिवर्सिटी नहीं हैं। हमारे यहाँ 1200 विश्वविद्यालय हैं और क़रीब 50 हज़ार कॉलेज। इसके बावजूद हमारे यहाँ के छात्र अगर विदेशों में पढ़ाई करने जा रहे हैं तो उसके पीछे कई कारण हैं। अच्छे कॉलेज में दाख़िला पाने की प्रतियोगिता, शिक्षा से आमदनी, अच्छा जीवन स्तर और हैसियत। इन कारणों के चलते यदि किसी छात्र को भारत में मौक़ा नहीं मिलता तो उसके पास विदेश जाने का ही विकल्प बचता है।

परंतु विदेशों में शिक्षा पाना इतना आसान नहीं होता। उच्च शिक्षा के लिए वीज़ा पाना भी एक अहम बात है। विदेश यात्रा और वहाँ पर रहन-सहन का ख़र्च भी काफ़ी होता है। इसी कारण वहाँ पर पढ़ाई के लिए जाने वाले छात्र पार्ट-टाइम नौकरी भी करते हैं। इन मामलों मेंकुछ चुनिंदा एजेंट सुहावने सपने का झाँसा दे कर भोले-भाले छात्रों को ठगने में कामयाब हो जाते हैं।

बात कनाडा की करें तो उच्च शिक्षा के लिए यह देश भारतीयों का सबसे पसंदीदा देश है। इतना ही नहीं कनाडा में पढ़ने जाने वालों में पंजाब के छात्रों की संख्या सबसे अधिक है। एक के बाद एक पंजाब के गाँवों से युवकों का कनाडा में पलायन एक सपने की तरह होता है। ये भोले-भाले युवक इन सुहावने सपनों के जाल में बड़ी आसानी से फँस जाते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि इनके मित्र व रिश्तेदार कनाडा या विदेशों में जाने के कुछ ही महीनों में अपनी ऐसी तस्वीरें भेजते हैं जहां वो महँगी गाड़ियों में घूमते व बड़े-बड़े घरों में दिखाई देते हैं। बस इसे देखते ही हर युवक का मन भी विदेश जाने को उतावला हो जाता है। बस फिर क्या वो सीधे-सादे किसान अपनी ज़मीन-जायदाद को गिरवी रख एजेंटों के चक्कर में आ जाते हैं। कनाडा जाने वाले कुछ छात्रों को यह भी नहीं पता होता कि उनका दाख़िला जिस कॉलेज या यूनिवर्सिटी में हुआ है उसकी मान्यता कैसी है। कनाडा में ऐसे कई कॉलेज हैं जिनके द्वारा दी गई डिग्री की कोई भी अहमियत नहीं है। यानी कि उन डिग्रियों पर नौकरी मिलना बहुत मुश्किल है। कनाडा में ऐसे कई कॉलेज हैं जो कि किसी शॉपिंग मॉल से चलाये जा रहे हैं। एक कमरे से चलने वाले ऐसे कॉलेजों के द्वारा दाख़िला मिलने पर भी वहाँ की सरकार वीज़ा दे देती है। जबकि अन्य देशों में ऐसे कॉलेजों को कोई महत्व नहीं दिया जाता।

कनाडा में कॉलेज खोलने के लिए सरकार द्वारा लाइसेंस आसानी से मिल जाता है। उसी आधार पर विदेशी छात्रों को वीज़ा मिलता है। आँकड़ों के अनुसार विदेशी छात्र कनाडा की जीडीपी में सालाना 20 अरब कैनेडियन डॉलर का योगदान देते हैं। शायद इसीलिए ऐसे छोटे कॉलेजों के द्वारा नियम क़ानून न मानने पर कोई सख़्त कार्रवाई नहीं की जाती। ऐसा नहीं है कि कनाडा में सभी कॉलेज निम्न स्तर के हैं। विदेशों से जो भी छात्र स्नातक की डिग्री लेकर आते हैं उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार अच्छे कॉलेजों में दाख़िला मिल जाता है। परंतु जो भी छात्र बारहवीं पास करने के बाद यहाँ आते हैं उनके लिए डिप्लोमा कोर्स लेने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचता। इस डिप्लोमा कोर्स की उपयोगिता सिवाय छात्रों से पैसा कमाने के और कुछ भी नहीं होती।

ऐसा नहीं है कि कनाडा सरकार को इस गोरखधंधे के बारे में कुछ नहीं पता। यहाँ की सरकार को जैसे ही पता चला कि ऐसे कई कॉलेज हैं जो अपनी क्षमता से अधिक विदेशी छात्रों को दाख़िला दे रहे हैं तो सरकार ने एक सूचना भी जारी की जिसमें विदेशी छात्रों को यह हिदायत दी गई कि फ़ीस जमा करने से पहले कॉलेज की ठीक से जाँच अवश्य कर लें। परंतु सीधे-सादे छत्रों को ठगने में एजेंट पीछे नहीं रहते। इतना ही नहीं अब तो कई ऐसे एजेंट हैं जिनके कनाडा में कॉलेज भी हैं और वो छात्रों को बड़ी आसानी से दाख़िला भी दे देते हैं। यदि किसी छात्र को पता है कि वो कनाडा जाने के योग्य नहीं है तो ये एजेंट उसे बहला फुसला कर फ़र्ज़ी दस्तावेज बना देते हैं। लेकिन इस पाखंड का पर्दा तब उठता है जब केवल डिप्लोमा करने के लिए ये छात्र विदेश पहुँचते हैं। इस जाल में फँसने के बाद कठिन परिस्थितियों में उन्हें मजबूरन अपना गुज़ारा मज़दूरों की तरह करना पड़ता है। इसलिए यदि आप या आपका कोई जानकार विदेश में पढ़ाई करने के बारे में सोच रहा है तो उसे पूरी छान-बीन के बाद ही ऐसा कदम उठाना चाहिए।

सीधे-सादे छत्रों को ठगने में एजेंट पीछे नहीं रहते। इतना ही नहीं अब तो कई ऐसे एजेंट हैं जिनके कनाडा में कॉलेज भी हैं और वो छात्रों को बड़ी आसानी से दाख़िला भी दे देते हैं। ...इसलिए यदि आप या आपका कोई जानकार विदेश में पढ़ाई करने के बारे में सोच रहा है तो उसे पूरी छान-बीन के बाद ही ऐसा कदम उठाना चाहिए।

भारतः अरबपति राज का उदय

आम चुनाव से ठीक पहले पेरिस स्थित मशहूर इनइक्वैलिटी लैब ने भारत में तेजी से बढ़ी आय एवं धन की गैर-बराबरी के बारे में देशवासियों को आगाह किया है। विषमता को वैश्विक चर्चा के एजेंडे पर लाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले अर्थशास्त्रियों के इस मंच ने अपनी ताजा रिपोर्ट का शीर्षक 'अरबपति राज का उदय' रखा है। इसमें बताया गया है कि दुनिया के जिन देशों में सबसे ज्यादा आर्थिक गैर-बराबरी बढ़ी है, उनमें भारत प्रमुख है। भारत की कुल आमदनी में आज आबादी के टॉप एक फीसदी आबादी का हिस्सा 22.6 प्रतिशत हो गया है, जबकि धन में इस छोटे समूह की हिस्सेदारी 40.1 प्रतिशत हो गई है। भारत में जब से आय कर के आंकड़े रखे जाने लगे, तब से टॉप एक फीसदी के पास इतनी आय और धन कभी इकट्ठा नहीं हुए थे। दूसरी तरफ निचली आधी आबादी का कुल आय में हिस्सा महज 15 प्रतिशत रह गया है। अर्थशास्त्रियों थॉमस पिकेटी और लुकस चांसेल ने 2015 में भारत के बारे में एक शोध पत्र प्रकाशित किया था।

अपने गहन अध्ययन के आधार पर उसमें उन्होंने बताया था कि भारत में सबसे ज्यादा गैर-बराबरी आजादी के ठीक पहले थी। लेकिन आजादी के बाद जो नीतियां अपनाई गईं, उनकी वजह से विषमता में गिरावट आई। 1980 के आसपास विषमता अपने सबसे निचले स्तर पर थी। लेकिन उसके बाद ट्रेंड फिर पलट गया। अब लुकस चांसेल ने बताया है कि 2015 के बाद गैर-बराबरी में पहले से भी ज्यादा तेज गति से बढ़ोतरी हुई है। तो यह साफ समझा जा सकता है कि आज जो परिणाम हमारे सामने है, वह किसी संयोग की वजह से नहीं है। बल्कि वह अपनाई गई आर्थिक नीतियों का परिणाम है। परिणाम यह है कि देश का असल शासन स्वरूप अब अरबपति राज का बन गया है। चांसेल ने ध्यान दिलाया है कि भारत के सामाजिक-आर्थिक आंकड़ों में एक प्रकार की अस्पष्टता है, इसलिए संभव है कि असल सूरत उससे भी भयावह हो।

साल 1980 के आसपास विषमता अपने सबसे निचले स्तर पर थी। लेकिन उसके बाद ट्रेंड फिर पलट गया। 2015 के बाद से गैर-बराबरी में पहले से भी ज्यादा तेज गति से बढ़ोतरी हुई है। स्पष्टतः आज जो सूरत है, वह किसी संयोग की वजह से नहीं है।

अपनी बात
संपादकीय

गायब हो गई चमक

अमेरिकी राष्ट्रपति जो बाइडेन ने राष्ट्रपति बनने के तुरंत बाद बड़े धूम-धाम से समिट ऑफ डेमोक्रेसीज- यानी लोकतांत्रिक देशों के सम्मेलन का आयोजन किया था। सबसे पहले इस सम्मेलन का विचार उन्होंने 2020 में अमेरिका में राष्ट्रपति चुनाव अभियान के दौरान रखा था। तब अमेरिकी जनमत के एक बड़े हिस्से में आशंका पैदा हुई थी कि तत्कालीन राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप के तौर-तरीकों से वहां लोकतंत्र खतरे में है। उसी समय दुनिया के कई अन्य 'लोकतांत्रिक' देशों में भी धुर दक्षिणपंथी दलों एवं नेताओं का उदय हुआ था। इसलिए समझ यह बनी थी कि लोकतंत्र के लिए दुनिया भर में चुनौतियां बढ़ रही हैं। तब बाइडेन ने वादा किया कि राष्ट्रपति बनने के बाद वे दुनिया भर की 'लोकतांत्रिक' शक्तियों को इकट्ठा करेंगे, ताकि इस व्यवस्था में फिर से जान फूंकी जा सके। लेकिन राष्ट्रपति बनने के बाद उन्होंने अपनी सोच बदल ली। तब उन्होंने 'लोकतांत्रिक' देशों के शासकों का सम्मेलन आयोजित करने का फैसला किया। यानी 'लोकतांत्रिक' देशों में लोकतंत्र के पुनर्जीवन के बजाय वे 'अधिनायकवादी' देशों के विरुद्ध 'लोकतांत्रिक' देशों की गोलबंदी में जुट गए।

जाहिर है, विश्व जनमत ने इस आयोजन को चीन और रूस के खिलाफ अमेरिकी लामबंदी के एक औजार के रूप में देखा। पहले आयोजन की मेजबानी अमेरिका ने की। दूसरे सम्मेलन की मेजबानी में उसने अपने कुछ सहयोगी देशों को भी शामिल किया। लेकिन बुधवार को समाप्त हुए तीसरे सम्मेलन की मेजबानी अकेले दक्षिण कोरिया ने की। इसमें अमेरिका की नुमाइंदगी विदेश मंत्री एंटनी ब्लिंकेन ने की। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी सहित कई देशों के नेताओं ने ऑनलाइन माध्यम से इसे संबोधित किया। लेकिन इसकी धमक गायब रही। इसके कारणों को समझा जा सकता है। सम्मेलन उस समय हुआ, जब फिलस्तीन में इजराइल के नरसंहार के पक्ष में खड़ा होकर अमेरिका ने अपने सॉफ्ट पॉवर को लहू-लुहान कर रखा है। दूसरी तरफ इस वर्ष ट्रंप के फिर से राष्ट्रपति चुन लिए जाने की संभावना प्रबल होती जा रही है।

सम्मेलन उस समय हुआ, जब फिलस्तीन में इजराइल के नरसंहार के पक्ष में खड़ा होकर अमेरिका ने अपने सॉफ्ट पॉवर को लहू-लुहान कर रखा है। दूसरी तरफ इस वर्ष ट्रंप के फिर से राष्ट्रपति चुन लिए जाने की संभावना प्रबल होती जा रही है।

समाचार विश्लेषण :

क्या फिर पोलियो फैल सकता है?

पोलियो बेहद तेजी से फैलने वाली वायरल बीमारी है। यह बीमारी पोलियो वायरस के चलते होती है। इससे स्थायी विकलांगता और गंभीर मामलों में मौत भी हो सकती है, खासकर पांच साल से कम उम्र के बच्चों में।

आज दुनिया में दो तरह के पोलियो वायरस मौजूद हैं। पहला- जंगली पोलियो वायरस और दूसरा ओरल पोलियो वैक्सीन (ओपीवी) से उत्पन्न होने वाला पोलियो वायरस। पाकिस्तान और अफगानिस्तान को छोड़कर, ज्यादातर सभी देशों में जंगली पोलियो वायरस पूरी तरह खत्म हो गया है। वैक्सीन से उत्पन्न होने वाला पोलियो वायरस यमन और मध्य अफ्रीका में पाया गया है।

दोनों ही तरह के पोलियो वायरस के तीन प्रकार होते हैं- टाइप एक, टाइप दो और टाइप तीन। वैक्सीन से उत्पन्न होने वाला वायरस, इनमें से किसी भी प्रकार का हो सकता है। वहीं, जंगली पोलियो का केवल 'टाइप एक' ही बचा है। टाइप दो को 2015 में और टाइप तीन को 2019 में समाप्त घोषित किया चुका है।

जंगली पोलिया वायरस के सभी प्रकारों में लक्षण एक जैसे हो सकते हैं। लेकिन उनसे हो सकने वाले नुकसान अलग-अलग होते हैं। एक प्रकार के वायरस के खिलाफ मौजूद इम्युनिटी दूसरे प्रकार से वायरस से रक्षा नहीं कर पाती है। पोलियो से संक्रमित होने वाले ज्यादातर लोगों में लक्षण नजर नहीं आते हैं। हर चार में से एक व्यक्ति में बुखार, सिरदर्द, गले में खराश और पेट दर्द जैसे लक्षण सामने आते हैं। आमतौर पर ये लक्षण दो से पांच दिन बाद अपने आप चले जाते हैं।संक्रमित लोगों में एक फीसदी से भी कम में स्थायी लकवे जैसे खतरनाक लक्षण सामने आते हैं। इनके चलते स्थायी विकलांगता हो सकती है।

बीसवीं सदी के मध्य में पोलियो वैक्सीन विकसित की गई थी। उसके बाद दुनियाभर में टीकाकरण अभियान चलाए गए। जिसके चलते आज सौ से ज्यादा देश पोलियो मुक्त घोषित किए जा चुके हैं।

अंतिम पेज का शेष

इलेक्टोरल बॉन्ड मामले में अब ज़्यादा तो कुछ निकलेगा नहीं लेकिन अल्फा-न्यूमरिक नंबर आने के बाद साफ़ हो जाएगा कि किस पार्टी को किसने कितना पैसा इलेक्टोरल बॉन्ड के ज़रिये दिया।वे कहते हैं, एजेंसियों के दुरुपयोग और क्विड प्रो क्वो को लेकर अवैधता का सवाल है तो उस अवैधता की जांच की जा सकती है। लेकिन ऐसी जाँच न सरकार चाहेगी न ही कोई भी राजनीतिक दल। साथ ही व्यावसायिक समुदाय भी ये नहीं चाहेगा।जांच होगी तो बहुत सी बातें खुलेंगी लेकिन मुझे नहीं लगता कि ऐसा होगा। ये तर्क भी दिया जा सकता है कि रेट्रोस्पेक्टिव (पूर्वप्रभावी) तरीक़े से इस मामले को खोलना बिजनेस के लिए अच्छा नहीं है।

छापा पड़ा, ठेका मिला और बॉन्ड ख़रीद!

8- हीरो मोटोकॉर्प

इस कंपनी पर 23 से 26 मार्च 2022 के बीच आयकर विभाग की छापेमारी हुई।कंपनी ने सात अक्टूबर 2022 को 20 करोड़ रुपए के इलेक्टोरल बॉन्ड ख़रीदे।

9- एपीसीओ इंफ्राटेक प्राइवेट लिमिटेड

इस कंपनी ने 15 जनवरी 2020 और 12 अक्टूबर 2023 के बीच 30 करोड़ रुपए के इलेक्टोरल बॉन्ड ख़रीदे

10 जनवरी 2022 को कंपनी ने 10 करोड़ रूपए के बॉन्ड ख़रीदे।कुछ ही दिन बाद जनवरी 2022 में ही इस कंपनी को एक अन्य कंपनी के साथ जॉइंट-वेंचर में 9000 करोड़ रुपए की लागत वाला वर्सोवा-बांद्रा सी लिंक बनाने का कॉन्ट्रैक्ट मिल गया।

10. डॉ रेड्डीज़ लैब

आठ मई 2019 और चार जनवरी 2024 के बीच 80 करोड़ रुपए के इलेक्टोरल बॉन्ड ख़रीदे।12 नवंबर 2023 को आयकर विभाग ने इस कंपनी से जुड़े लोगों और उनके सहयोगियों पर अवैध नक़द लेनदेन के मामले में छापेमारी की।17 नवंबर 2023 को इस कंपनी ने 21 करोड़ रुपए के बॉन्ड ख़रीदे।चार जनवरी 2024 को कंपनी ने 10 करोड़ रुपए के बॉन्ड ख़रीदे।

जेएनयू के पूर्व प्राध्यापक प्रोफ़ेसर अरुण कुमार आर्थिक मामलों के जानकार हैं। उन्होंने काले धन और उसके अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले असर पर द ब्लैक इकॉनमी इन इंडिया नाम की किताब भी लिखी है। इस डेटा से उभरे पैटर्न पर वे कहते हैं, सवाल क्विड प्रो क्वो (कुछ हासिल करने के लिए कुछ देना) का उठता है। हमें पता है कि देश में हर किस्म की अवैध गतिविधियां चलती हैं। ख़ासकर सत्तारूढ़ पार्टियां इनकम टैक्स, ईडी का इस्तेमाल करती रही हैं, लोगों को निचोड़ने के लिए। लेकिन इलेक्टोरल बॉन्ड का डेटा दिखा रहा है कि ये बहुत ज़्यादा हो गया था। पहले भी होता था पर अब ये बहुत ज़्यादा हो गया है। जो सत्तारूढ़ पार्टी है वो इन एजेंसियों का इस्तेमाल कर के पैसा उगलवाती है और विपक्ष पर दबाव बनाने के लिए इन एजेंसियों का इस्तेमाल किया जाता है।'

प्रोफ़ेसर कुमार के मुताबिक़ राज्यों में भी सत्तारूढ़ पार्टियां दबाव डाल कर पैसे उगाहती हैं लेकिन ईडी और इनकम टैक्स केंद्र सरकार के हाथ में हैं। वे कहते हैं, सबसे बड़े प्रोजेक्ट भी केंद्र सरकार के हाथ में हैं। इसीलिए ये माना जा रहा है कि बीजेपी में इसका सबसे ज़्यादा दुरुपयोग किया क्यूंकि वो सत्ता में है।

डेटा के विश्लेषण से ये भी दिख रहा है कि चुनावी बॉन्ड ख़रीदने के बाद भी कंपनियों पर रेड हुई हैं। सरकार के पक्ष में एक तर्क ये दिया जा रहा है कि सरकारी एजेंसियों ने निष्पक्षता से काम किया और उन कंपनियों पर भी छापा मारने से नहीं हिचकीं, जिन्होंने इलेक्टोरल बॉन्ड ख़रीदे थे।

प्रोफ़ेसर अरुण कुमार कहते हैं, जिन पर भी आरोप होगा वो इसे रेशनलाइज (तर्कसंगत बनाना) तो करेंगे ही। एक तर्क ये भी हो सकता है कि बॉन्ड ख़रीदने के बाद भी अगर रेड हुई तो वो इसलिए हुई कि पार्टी इलेक्टोरल बॉन्ड के ज़रिए मिले धन से संतुष्ट नहीं थी और ज़्यादा धन चाहती थी। ये हो सकता है कि अगर किसी ने पर्याप्त मात्रा में धन नहीं दिया है तो उसे और निचोड़ेंगे और ज़्यादा पैसा निकलवा लेंगे। तो कुछ भी कहना मुश्किल है क्योंकि दोनों तरह की संभावनाएं हैं।

प्रोफ़ेसर कुमार के मुताबिक़ अगर ये पता हो कि कौन कितने रुपए के बॉन्ड ख़रीद रहा है तो उसे निचोड़ना और आसान हो जाता है। वे कहते हैं, अगर किसी कंपनी को दस हज़ार करोड़ रुपए का प्रोजेक्ट मिल रहा है तो आप उसमें से 8-10 फ़ीसदी निचोड़ सकते हैं। इससे ये भी पता चलता है कि नौकरशाही को पता होता है कि कौन कितना कमा रहा है और इसी जानकारी का इस्तेमाल उसे निचोड़ने में किया जाता है। उत्तर प्रदेश के पूर्व पुलिस महानिदेशक विक्रम सिंह कहते हैं कि कब ईडी या आईटी रेड हुई और कब इलेक्टोरल बॉन्ड से चंदा दिया गया या चंदा देने के बाद किसी कंपनी को सरकारी एजेंसी की कार्रवाई से राहत मिली हो ये कोई भी इंटेलिजेंस एजेंसी पता लगा सकती है।वे कहते हैं, मेरी समझ में ये नहीं आ रहा है कि जब आईटी में डेटा मौजूद है तो क्यों सॉफ्टवेयर के ज़रिये उससे ये पता नहीं लगाया जा सकता कि क्या किसी ने रेड होने के बाद इलेक्टोरल बॉन्ड ख़रीदे या क्या किसी के बॉन्ड ख़रीदने के बाद मामला बंद कर दिया गया और क्या मामला बंद कर देने के बाद फिर चंदा मिला।

विक्रम सिंह कहते हैं कि ये सभी सवाल करोड़ों लोग पूछ रहे हैं। वे कहते हैं, इसका जवाब सबको चाहिए क्यूंकि इलेक्टोरल बॉन्ड जब लाए गए थे तो पारदर्शिता की बात की गई थी... कि जो चंदा राजनीतिक दलों को दिया जाए वो पारदर्शी हो, बिना किसी दबाव के हो। ये जानने का अधिकार सबको है और जब सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि ये सार्वजानिक हो जाना चाहिए तो सार्वजानिक होना चाहिए। पूरा डेटा बिना किसी तरह से चीज़ों को छुपाते हुए सामने आना चाहिए... ऐसा नहीं होना चाहिए कि ज़रूरी बातों को छुपा लिया जाए और ग़ैर-ज़रूरी बातों को ज़ाहिर कर दिया जाए।

विक्रम सिंह के मुताबिक़ शेल कंपनियों और उनसे जुड़े लोगों की जानकारी भी सामने आनी चाहिए। वे कहते हैं, मूल डोनर का पता लगाया जाना चाहिए। जब मिलीभगत की जांच की जाती है तो ज़रूरी है कि उसकी तह तक पहुंचा जाए। इस मामले में अगर जानकारी छुपाई जाती है तो वो सुप्रीम कोर्ट के आदेश के बिल्कुल ख़िलाफ़ होगा।

प्रोफ़ेसर कुमार कहते हैं कि इलेक्टोरल बॉन्ड मामले में अब ज़्यादा तो कुछ निकलेगा नहीं लेकिन अल्फा-न्यूमरिक नंबर आने के बाद साफ़ हो जाएगा कि किस पार्टी को किसने कितना पैसा इलेक्टोरल बॉन्ड के ज़रिये दिया।वे कहते हैं, एजेंसियों के दुरुपयोग और क्विड प्रो क्वो को लेकर अवैधता का सवाल है तो उस अवैधता की जांच की जा सकती है। लेकिन ऐसी जाँच न सरकार चाहेगी न ही कोई भी राजनीतिक दल। साथ ही व्यावसायिक समुदाय भी ये नहीं चाहेगा।

जांच होगी तो बहुत सी बातें खुलेंगी लेकिन मुझे नहीं लगता कि ऐसा होगा। ये तर्क भी दिया जा सकता है कि रेट्रोस्पेक्टिव (पूर्वप्रभावी) तरीक़े से इस मामले को खोलना बिज़नेस के लिए अच्छा नहीं है। मुझे नहीं लगता कि कोर्ट मॉनीटर्ड एसआईटी या कमिशन गठित की जाएगी। पर ये होना चाहिए और जनता के सामने ये बात खुल कर आनी चाहिए।

विक्रम सिंह कहते हैं कि सुप्रीम कोर्ट को एक कमिटी बनानी चाहिए क्योंकि आज सभी सरकारों की विश्वसनीयता पर बड़ा सवाल लगा हुआ है।₹वह कहते हैं, ₹सुप्रीम कोर्ट की अध्यक्षता वाली कमिटी ही होनी चाहिए जो 15 दिन के अंदर इन सब सवालों का जवाब दे दे। सरकार को भी इस पर एक श्वेत पत्र जारी करना चाहिए।

(साभार- बीबीसी.कॉम/हिंदी)